

અર્થ:-આત્માનો પરમભાવ જે જ્ઞાન, તદનુ-
 ઘાથી દર્શન, ચારિત્ર, તપ, વૈર્ય, કર્તૃતા, ભોક્તૃતા,
 સાહકતા, વ્યાપકતા, રક્ષણતા, રમણતા, આ-
 ધારાધેયતા વિગેરે અનંત સ્વધર્મો જે અનાદિકાલથી
 કર્મમલવડે લિપ્ત થયેલા હતા-યાધવભાવે પરિણ-
 વતા હતા, તે શુક્લધ્યાનની તિક્ષ્ણ આંધ્ર વડે
 કર્મમલ અસ્મ થઈ જવાથી સંપૂર્ણ પ્રગટ થયા અર્થાત્
 નિરાધાવ—સ્વતંત્ર પણ પાંતપોતાના કાર્યભાવે
 પરિણમવા લાગ્યા એટલે શુદ્ધ પરિણતિ રૂપ અનુ-
 પમ ક્ષિત્તીને વરયા-તેના સ્વામી થયા. તેજ
 પરમાત્મ જિનેશ્વર દેવ, ક્રોધ માન માયા લોભ આદિ
 મોન હીય કર્મની અઠાવીશ પ્રકૃતિથી રહિત તથા
 જ્ઞાનાદિક ગુણના દરિયા અર્થાત્ જ્ઞાનાદિ ગુણના
 અલૂટ નિધાન છે. એટલે જેમ દરિયામાંથી જલ
 લૂટે નહિ તેમ તેમનામાંથી કોઈ પણ કાલે જ્ઞાનાદિ
 ગુણો-પર્યાયો લૂટવાના-ક્ષીણ થવાના નથી, અનંત-
 કાલ સુધી એક સરસી રીતે પરિણમ્યાંજ કરશે ॥૬॥

અવલંબન ઉપદેશક રીતે, શ્રી સામંધર
 દેવ । મજીયે શુદ્ધ નિમિત્ત અનોપમ, તજીયે

भव भय देवरे स्वामी ॥ वि० ॥ ७ ॥

अर्थ-श्री सीमंधर देवमां साध्य पद पूर्ण पणें प्रगट होवाथी तेज पुष्ट-अनुपम निमित्त हेतु छे (साध्य साध्य धर्म जेमांहे होवे रे ते निमित्त अति पुष्ट, तथा च-पुष्ट हेतु जिनेंद्रोय, माक्ष सद्भाव साधने) तथा सर्वज्ञ अने वीतराग होवाथी आसमोक्षमार्गना साक्षा उपदेशक तथा सर्व आत्मरिद्धि संपूर्ण पणे प्राप्त होवाथी परम आधार भव समुद्रमां वृडता भव्य प्राणीयोने जहाज समान, भवाद्दवीमां सथ्यवाह समान छे. न्याय पूर्वक एम सिद्ध होवाथी तेउनी भक्ति करीये अर्थात् तेमनी आज्ञा आपणा शिर उपर चढावीप सन्मानीये. कहुं छे के "आणाकाही भक्तो, आणा छेइऊ अभक्तात्ति" माटे तेमनी आणा प्रमाचे वत्तीए. मिथ्यात, अज्ञान, कषाय, प्रमाद, अविरति रूप भयंकर भव भ्रमणनी देवनो त्याग-परिहार करीये ॥ ७ ॥

शुद्ध देव अवलंबन करतां, परिहरीये

અદત્તાદાન વિરમણ, મૈથુન વિરમણ તથા પરિગ્રહ સંગ્રહ વિરમણ રૂપ પંચમહાવ્રત તથા ક્ષાંતિ, માર્દવ, આર્યવ, મુન્તિ, તપ, સંયમ, શૌચ, સત્ય, અર્કિચન તથા બ્રહ્મચર્ય આદિ સર્વે ધર્મોમાં અનુવૃત્તિ ધરાવનાર અહિંસા-દયા ધર્મ છે. જેમાં સર્વે ધર્મનો સમાવેશ થઈ જાય છે. ઉક્તંચ-સઠ્ઠાઝંબિ નહ્ઠં, જહ સાયરંમિ નિવડંતિ । તહ ભગ, વર્ઠ અહિંસિ, સઠ્ઠે ધમ્મા સમિહ્હાન્તિ ॥ તથા જેને સર્વ મતાવલંબીઝં સ્વિકારે છે-સન્માને છે “અહિંસા પરમો ધર્મ, હિંસા સર્વત્ર ગર્હિતા” પરન્તુ જૈન શિવાય અન્ય મતાવલંબીઝં અહિંસા-દયામાં વર્તી શકતા નથી કારણ કે તેઝં હિંસ્ય હિંસા તથા હિંસાના કારણોને ઘથાર્થ સંપૂર્ણ ંલલ્લતા નથી.

સર્વજ્ઞ તીર્થંકર દેવ દ્રવ્યહિંસા તથા ભાવહિંસા એમ હિંસાનાં બે પ્રકાર પ્રરૂપે છે-શૃધીકાય, અપકાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય અને વનસ્પતિકાય એમ પંચ સ્થાવરકાયિક એકેન્દ્રિ જીવો તથા ચદ્રિય આદિ અસ જીવોનાં પાંચ ંદ્રિયો, મનોબલ, વચનબલ, કાયબલ,

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद तथा योगेन
सेवन करवुं ते हिंसानां कारणो छे ते कारणो सेव-
नाथी हिंसा थाय छे कहुं छे के “कारण जोगे
कारज निपजेरे, एहमां कोइ न वाद। पण कारण
विणुं कारज साधोए रे, ते निज मति ऊन्माद”

एम स्याद्वाद नय युक्त जिन प्ररूपित द्रव्यहिंसा
तथा भावहिंसाना स्वरूपथी अजाण तथा तेना
कारणोथी अजाण मिथ्यादृष्टी जीवो एक समय
मात्र पण अहिंसाभावमां वर्त्ती शकवाने असमर्थ
छे तथापि मोहमद्यमां बेभान थयेला हिंसामां
वर्त्तता छतां हसे दया पालोए छोए-दयालु छोए
एम पोताना जीव्हाशथी जल्पना तथा मनमां
कल्पना करे छे पण तेथी शुं ? सांची दया पाल्या
शिवाय तेना परमोत्तम फल मोक्ष सुखने पामी शके
नहि ।

पण जे स्याद्वाद नय युक्त जिन प्ररूपित द्रव्य-
हिंसा तथा भावहिंसाना स्वरूपनुं तथा तेना कार-
णानुं सम्यक्ज्ञान धरावे छे-जे परमोत्तम फलना
उत्सुक छे हिंसानुं फल जे भवभ्रमण तेथी उद्दिष्ट

भयभीत छे एवा सम्पक्कद्रष्टी जीवोज अहिंसामां
वर्ती शकवाने समर्थ न “(पहमं नाणं तउं
दया)” जे जे अंशो अहिंसाभावमां वर्त्ते छे तेने
तेटला अंशो अहिंसक कहिए माटे चोथा गुणस्था-
नथी मांडी उपला उपला गुणस्थानोमां अहिंसक-
दशा नय प्रमाण अधिकी अधिकी वर्त्ते छे पण हे
भगवंत ! आप हिंसाना सर्वे कारणोथी दूर वर्त्ती
होवाथी सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वदा अहिंसक भावमां
वर्त्ती, जो राग द्वेष रहित होवाथी सर्वे जीवो
ऊपर एक सरखी रीते दया राखोडो, तेथी सर्वे
दयालु जीवोमां आप राजा समान शिरोमणि हो,
तेथी हे दयालाराय श्री युगसंधर स्वामी ! करुणा
निधान तथा समर्थ जाणी आप प्रति विनंती
उपहारुं हूं कारणके दयालु तथा समर्थ होय तेज
सेवकनो विनंति मनोर्थने परिपूर्ण करे माटे मुज
लैवकनी विनंती करुणा भावे चित्तमां धारी-“ए
परपरिणति रंगथी मुजने नाथ उगार”- हे नाथ !
हे स्वामी ! अनादि विभाव वशे दुहुगल पर्याय
जे शरीरादिक तेमां अहंपणुं मानी ते ऊपर अत्यंत
राग करी तेमां तखीन थइ रखो हूं तथा ते शरी-

रादिकने प्रशस्त-हितकारी कुटुम्बी जनो मित्रवर्ग
 नोकर चाकर तथा धन धान्य मणि औषधी आ-
 वास आदि अनेक पुद्गल पर्यायोमां तथा पंचेंद्रिना
 अनेक मनोज्ञ विषयमां राग वशे तल्लीन थह रह्यो
 छुं, तेने खेलववा राखवा माटे अनेक प्रयास करूं
 छुं, अनेक विकल्प जाल रचूं छुं, तेनी तृष्णारूपा
 आगमां निरंतर प्रज्वलित थाजूं छुं, तेनो वियोग
 थाय ते माटे भय भोगचुं छुं, तेना वियोगे शोक
 संताप आक्रंद विगेरेनो भोक्ता बनूं छुं, अने पोतानी
 सहज अनंत स्वतंत्र, अप्रथग् भूत स्वक्षेत्रवर्ती
 अविनश्वर सुख निदान आत्म परिणतिथी वियोगी
 रहूं छुं माटे हे भक्त वत्सल प्रभु ! एवी दुष्ट परप-
 रिणतिना रंगथी मुजने हवे शीघ्रमेव उगारो ॥ १ ॥

कारक ग्राहक भोग्यतारे, में कीधी महा-
 रायेरे, दयालराय ॥ पण तुज सरीखो प्रभु
 लहीरे, साची वात कहायेरे, दया० ॥२॥

अर्थ--सर्वे द्रव्यो अस्तित्व, घस्तुत्व, द्रव्यत्व,
 प्रमेयत्व अगुरुलघुत्व अने सत्त्व स्वभाषवंत होवा-
 पी पोताना गुणपर्यायोना कर्ता, ग्राहक, व्यापक

आदिपणे पोतानी सत्ताभूमिमां सर्वदा वर्से छे,
 तथा वली “क्षेत्र काल भावानाम् एक समुदा-
 यित्वं द्रव्यत्वम्” क्षेत्र काल भावनं एक समुदा-
 यिपणुं ते द्रव्यत्व छे माटे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव
 परस्पर अभेद छे-अप्रथम भूत छे तेथी कोइ द्रव्य
 बीजा द्रव्यना क्षेत्र काल भावमां प्रवेश करवा
 सर्वथा असमर्थ छे माटे निश्चय नये कोइ द्रव्य
 अन्य द्रव्यनो कारक कर्ता, भोक्ता, ग्राहक, व्यापक,
 आधार, आधेय बिगेरे थइ शके नहि, तथापि जीव-
 मां अनादि विभाव स्वभाव होवाथी हुं मिथ्यात
 अज्ञान वशे परपरिणति-पुद्गल पर्यायो विधे कर्ता
 भोक्ता, ग्राहक, व्यापक आदि बुद्धि करी मारी
 आत्मीक स्वतंत्र रिद्धिधी वियोगी रह्यो पण हे
 युगसंभर स्वामी ! आपने संपूर्ण नये पोताना परि-
 णामना कर्ता, ज्ञाता तथा तेमांज रमण करनार
 तथा तेनोज आस्वादन-अनुभव लेनार होवाथी
 साक्षा प्रभु जाणी आप प्रति हुं मारी साखी कथ
 निवेदन करुं छुं ॥ २ ॥

यद्यपि मूल स्वभावमेरे, पर कर्तृत्व

विभावरे ॥ दयालराय ॥ अस्ति धर्म जे माह-
रोरे, एहनो तथ्य अभावरे ॥ दयाल-
राय ॥ श्री० ॥ ३ ॥

अर्थ-अनादि कालथी जो के माहरा ज्ञान
दर्शन चारित्ररूप आत्म गुणमां परकर्तृत्वादि विभा-
वनो सरलेश थयेलो छे तेथी हुं अनादिकालथी
परकर्तृत्वादि विभाव रूप परिणमुं छुं तो पण सत्ता-
गते रहेला माहरा अस्तिधर्ममां-सामान्य स्वभाव-
मां खांस्वर ते विभावनो अभाव छे कारण के सा-
मान्य स्वभाव सदा निगवरण छे; माटे जो हुं मा-
हरा अस्तिधर्म तरफ लक्ष आपुं तेने प्रगट करवा
रुचि धरुं तो निश्चय कर्मजन्य उपाधि रूप विभा-
वनो समूल नाश करी संपूर्ण शुद्ध सुखनिधान
अस्तिधर्मनो भोगी थाउं, सादिअनंतकाल सुधी
ए अवस्थामां अवस्थित रहुं ॥ ३ ॥

पर परिणामिकता दशारे, लहि पर कारण
योगरे, दयालराय ॥ चेतनता परगत थईरे,
राची पुद्गल भोग रे, दयालराय ॥ श्री० ॥ ४ ॥

अर्थ-ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तथा भावकर्मना
उदय वशे पर परिणामिक दशाने प्राप्त थयो हूं,
अर्थात् पर द्रव्यना परिणामने पोतानो परिणाम
मानुं हूं एटले मन वचन अने कायानी क्रियाने आत्म
क्रिया मानुं हूं तेशी मारी चेतनता पर परिणाम-
मां व्यापी-परगत थई-पुद्गल पर्यायोने भोगवचा-
मां राची-आमक्त थई-लीन थई-त्यांज स्थित थई
तेशी आत्म परिणामनो भोग लेवा अवकाश मलयो
नहीं ॥ ४ ॥

अशुद्ध निमित्त तो जड अत्रे, वीर्य शक्ति
विहीनो ॥ ६० ॥ तुं तो वंरज ज्ञान्योरे,
सुख अनंते लीनो ॥ ६० ॥ श्री० ॥ ५ ॥

अर्थ-आत्माने अशुद्ध परिणामे अर्थात् अज्ञान,
मिथ्यात अने कपाय रूप परिणमवामां शुभाशुभ
कर्मदिय वडे पुद्गल द्रव्य गुण पर्यायनो संबंध ते
निमित्त छे पण ते शुभाशुभ कर्मदिय, जड-चेतनता
रहित तेमज वीर्य शक्ति रहित होवारी तेउं
आत्माने अशुद्ध परिणामे परिणमाववामां पोतानी
मेले कारण बनवाने असमर्थ छे, तथा कारण पद तो

उत्पन्न पर्याय हे माटे ज्यारे कर्ता कार्य साधवानो रुचीवंत थइ तेने निमित्तमां वापरे त्यारे तेमां कारण पद उत्पन्न थाय छे. “ए कारका कर्तुराधिना” जो आत्मा प्रमाद भावमां वर्त्ते तो ते शुभाशुभ कर्मोदय अशुद्ध परिणामनु निमित्त थाय पण पोते सचेत थइ पोताना शुद्ध कार्यनो कर्ता थाय त्यारे कारकचक्र सुलटे अने शुभाशुभ कर्मोदये अशुद्ध परिणामे परिणमे नाहे तो ते पुद्गलो निमित्त पण थइ शके नहि. जेम कुंभार घट कार्यनो रुचिवान थाय नहि, तथा दंड चक्रादिने ते घट कार्य साधवामां वापरे नहि, तो दंड चक्रादि तेवारे घट कार्यना निमित्त कहेवाय नहि. पण हुं अनादि विभाव वशे राग द्वेषे परिणमवानी द्रव्य देवथी ते पुद्गल जडमां कारण पद उत्पन्न करी अशुद्ध परिणामे परिणमुं हुं, तेथी आत्मिक शुद्ध कार्य करवामां आत्म वीर्य अत्यंत हीन थइ रह्ये हुं, अर्थात् अनंतज्ञान अनंत-दर्शन अनंतसुखरूप अनुपम आत्म व्यक्तिथी रहित कंगाल बनी अत्यंत पराधिन, दरिद्र-दयामणि अवस्थाने भोगवुं हुं पण हे प्रभु ! तसे तो अनंत ज्ञान वीर्यना परिपूर्ण पणाथी-पूर्ण व्यक्तिथी सहज,

अकृत्रिम, स्वतंत्र, एकांतिक, अंतातीत, अव्याबाध
आत्मोक सुखमां लीन-संतुष्ट-निमग्न थइ रह्या
ओ ॥ ५ ॥

तिण कारण निश्चय करचो रे, मुज निज
परिणति भोगरे । द० । तुज सेवाथी नीप-
जेरे, भांजे भव भय शोगरे ॥ द० ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थ-तेथी न्याय युक्त ज्ञानद्रष्टिथी मने एवो
निश्चय थयो हे के हे भगवंत ! कर्म रूप रजथी
सर्वथा निर्लेप स्फटिक समान तमारा संपूर्ण, निर्मल
पवित्र गुणोलुं सेवन करतां-भक्तिकरता माहरी आत्म
परिणति रूप अबाध्य अखूट स्वतंत्र पूर्णानंदमय
सहज आत्म संपदाना भोगनी मने प्राप्ति थशे
तथा. "भांजे भव भय सोग" अनादि कालथी
चार गतिरूप भवसमुद्रमां अज्ञान वशे अनेक
दुःसह दुःखो तथा तज्ज्ञान्य भय, शोक, संताप,
आक्रंद विगरे सहं हुं, तेनो सहज लीलामात्रमां
नाश थशे ॥ ६ ॥

शुद्ध रमण आनंदता रे, ध्रुव निस्संग

स्वभाव रे ॥ द० ॥ सकल प्रदेश अमूर्त्ततारे,
ध्यातां सिद्धि उपायरे ॥ द० ॥ ७॥

अर्थ-अचल, अबाधित, निरावरण, शुद्ध
परमात्म पद रमण-अनुभवजन्य आनन्दने तथा
पोताना ध्रुव अर्थात् पोताना द्रव्य क्षेत्र काल भावे
सदा सत् (द्रव्यं गुण समुदायं, स्थितं ओगाह
वदृणा कालो । गुण पञ्चाय पवत्ति भावो
निश्च वत्थु धम्मो सो) अनन्त अन्वय गुणनो
पिंड तथा निस्संग-सकल परभाव, परिग्रह्यी
अतीत एवा आत्मभावने तथा अलेशी, अस्पर्शी,
अगंधी अवर्णी, अरसो, अक्रोधी, अमायी, क्षमाणी,
अलोभी, अवेदी आदि अनेक व्यतिरेक गुणना
समूहरूप सकल प्रदेश अमूर्त्ति पिंड आत्म द्रव्यने
सर्वे परद्रव्यनी मूर्च्छांती पोतानी आत्म परिणति
वारी पोतानी आत्म भूमिमां स्थित करी-लीन
करी पोतानी सर्वे वीर्य शक्ति एकत्र करी एकाग्र
चित्ते ध्यातां अमूर्त्त परमात्मपदनी सिद्धि थाय-
ध्याता ध्येयनी एकता थाय ॥ ७ ॥

સમ્યક તત્ત્વ જે ઉપદિશ્યોરે, સુખતા
તત્ત્વ જણાયરે ॥૬૦॥ શ્રદ્ધા જ્ઞાને જે ગ્રહ્યોરે,
તેહિજ કાર્ય કરાયરે ॥૬૦॥ શ્રી૦ ॥૮॥

અર્થ-દ્રવ્યના સર્વ પર્યાયના જ્ઞાન વિનાના
एकांत वादीयो (मिथ्या वादीयो) (एकांते होइ
मिथ्यतो) ના વિંડબનારૂપ ભવ અમૃણના હેતુમૂલ
दुर्नयथी परिपूर्ण अज्ञान जन्य सिद्धांतथी उपजत
अज्ञानरूप अंधकारना समूहनो नाश करना
सकलनय तथा प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणथी अबाधित
स्याद्वाद् युक्त, अव्याप्ति अतिव्याप्ति तथा
असंभवादि सकल दूषणो रहित जीवादि तत्त्वोनु
सत्य स्वरूप प्रतिपादन करना. जिनेश्वरना परम
कल्याणकारी बचनो श्रवण मनन निविध्यासन
करतां शंसय विपर्यय अने अनध्यवसाय रहित
तत्त्व स्वरूपनु सम्यक्ज्ञान थाय अने सम्यक्दर्शन
सम्यक्ज्ञान युक्त जो आत्म स्वरूप जाणीये-
ग्रहण करीये तोज परमात्म सिद्धिना साधक बने
शकीए ज्यांसुधी आत्मद्रव्यनु सम्यक्ज्ञान सम्यक्
दर्शन थयुं नथी त्यांसुधी आदरेलुं चारित्र ते सम्यक्
विशेषणने प्राप्त थइ शके नहि अने सम्यक्चारित्र

વિના કદાપિ કાલે મોક્ષની પ્રાપ્તિ થઈ શકે નહિ.
 કર્યું છે કે “વિરઆ સાવદ્વિષાઠં, કષાય હીણા
 મહાવય ધરાવી । સમ્મદિઠી વિદુષા, કયાવિ
 મુરુલ્લં ન પાવંતિ” તથા “ નયગમ મંગ
 પમાણેહિ, જો અપ્પા સાયવાય ભાવેણ ।
 મુણ્ણ મોરુલ્લ સરુલ્લં સમાદિદ્ધ સો નેઠં” ॥૮॥

કાર્ય રુચી કર્તા થયેરે, કારક સવિ
 પલટાયરે ॥ ૮૦ ॥ આતમ ગતે આતમ રમેરે,
 નિજ ઘર મંગલ થાયરે ॥ ૮૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ-જ્યાંસુધી જીવ મિથ્યાત્વ ગુણસ્થાને બસે
 છે-સમ્યક્દર્શનની પ્રાપ્તિ થઈ નથી, ત્યાંસુધી
 અનાત્મ વસ્તુમાં આત્મવુદ્ધિ-અહંપણું માને છે
 અર્થાત્ પુદ્ગલ સ્કંધોથી બનેલું ચૈતન્યશૂન્ય જે શરીર
 તેમાં લોલીભૂતપણે પરિણમિ પોતાનું આત્મ અંગ
 માને છે તથા તે શરીરને જે પ્રશસ્ત, હિતકારી
 પદાર્થો-સ્ત્રી ધન કુટુંબાદિને પોતાનાં હિતકારી
 માને છે, તેજમાં રાગરસે રીએ છે. સંસાર ભ્રમણ
 પરિપાટીને વધારે છે (જો અપસત્થો રાગો, વદ્ધઈ
 સંસાર ભ્રમણ પરિવાડી । વિસયાઈસુ સયના-

હસુ ઈઠત્તં પુગ્ગલાઈસ) અને તે શરીરાદિને પોતા
 ના સાધ્ય જાણી નિરંતર તેને સાધવા માટે અનેક
 પ્રયાસ કરે છે-તેનેજ પોતાનું કાર્ય જાણે છે એમ
 અજ્ઞાન વશે પોતે પર કર્તૃત્વ ભાવે પરિણમે છે તેથી
 કારકચક્ર શુદ્ધ સ્વભાવથી વિરુદ્ધ બાધકભાવે
 પરિણમે છે. પણ ડૅયારે આત્મા યોગ્ય કારણ વડે
 સમ્યક્જ્ઞાનનો લાભ પામે, અનંત પરમાનંદમય
 સંપૂર્ણ સુખના હેતુ પરમાત્મ પદ રૂપ પોતાના શુદ્ધ
 સાધ્યને ડંલલે, ત્યારે પર સાધ્ય તરફથી અરુચી
 થાય અને પોતાનું શુદ્ધ સાધ્ય સાધવાની રુચી થાય
 શુદ્ધ કાર્ય કરવાનો અભિલાષી થાય ત્યારે જે
 કારકચક્ર બાધકભાવે અર્થાત્ આત્માના જ્ઞાન
 દર્શન સુખ વીર્યની ઘાત કરવા રૂપ કાર્ય પરિણમંતુ
 હતું તે સાધક ભાવે એટલે શુદ્ધ જ્ઞાન દર્શન સુખ
 વીર્ય સાધવા રૂપ પરિણમે એટલે આત્મ પોતાના
 શુદ્ધ પરિણામે વર્તે-તેમાં રમણ કરે-ત્યાંજ સ્થિત
 થાય એમ થતાં આત્માના સર્વે પ્રદેશે મંગલ થાય
 અર્થાત્ કર્મ રૂપ રજ ગલી જાય-અત્યંત સુખ
 નિવાનનો લાભ થાય ॥ ૯ ॥

ગ્રાણ શરણ આધાર છોરે, પ્રભુજી મહ્ય
 સહાયરે ॥ ૬૦ ॥ દેવચંદ્ર પદ નીપજેરે, જિન

કોઈ પણ કાલે દ્રવ્ય તે પર્યાયથી-હીણ-ક્ષીણ થાય નહિ. કારણ કે તોરોભાવે રહેલા પર્યાયો આવીર્ભાવે થાય છે અને તે પાછા તોરોભૂત થાય છે એમ પરાવર્તન ચક્રે પરિણમે છે. ઉક્તંચ- સંમતિ ગ્રંથે-“દબ્બં પજ્જાય વિઉચ્ચં, દબ્બં વિયુત્તાય પજ્જાયા નચ્છિ ઉપ્પાયબ્બય મંગાઈ દવિય લરકણંણયં” તથાંચ પંચાસ્તિકાય સમયસારે-“દબ્બં સહ્સરકણિયં, ઉપ્પાદબ્બય ધુવત્ત સંજુત્તં । ગુણ પજ્જાયા સયં વા, જં તં ભસ્મંતિ સબ્બણ્હુ” ॥ ૧ ॥

દ્રવ્યથકી છકાયને; ન હણે જેહ લગાર ॥
પ્રમુજી ॥ ભાવદયા પરિણામનો, એહિજ છે
વ્યવહાર ॥ પ્રમુજી ॥ વા૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ-પૃથ્વીકાય, અપકાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય
ચનસ્પતિકાય અને ત્રસકાય એ છ કાયના જીવના
દ્રવ્યપ્રાણને હણવા હણાવવા તથા હણતાની અનુ-
મોદનાં કરવી એ દ્રવ્યહિંસા છે તે દ્રવ્યહિંસામાં
ભાવહિંસાના કારણની ભજના છે. તેથી ભાવ-
હિંસાનો ત્યાગી દ્રવ્યહિંસા આદરે નહિ-થવા દે
નહિ-સાવચેત પળે વર્તે-સમિતિ પૂર્વક વર્તે અર્થાત્

इकायना जीवोनी द्रव्यहिंसानो त्याग करवो ते
भावदयानो तथा भावदयाना परिणामीनो व्यवहार
छे. द्रव्यअहिंसा ते भावअहिंसानो व्यवहार-कारण
छे ॥ २ ॥

रूप अनुत्तर देवथी, अनंतगुणुं अभिराम
॥ प्रभुजी ॥ जोतां पण जग जंतुने न वधे
विषय विराम ॥ प्रभुजी ॥ वा० ॥ ३ ॥

अर्थ-सर्वे जीवोंने आ संसार जन्य जन्म जरा
मरणादि रूप भयंकर दुःखथी छोडावी रत्नत्रय
पमाडी अनंत आत्मीक परमानंदना भोक्ता करूं
एवी उत्कृष्ट भावदयाना योगे अत्यंत तीव्र शुभ
परिणाम वडे-सर्वोत्कृष्ट पुण्यानुबंधी पुण्यना उदये
हे बाहु जिनेंद्र ! आपनुं रूप लावण्य कांति, विजय
विजयंत जयंत अपराजीत अने सर्वार्थसिद्ध
विमानवासी देवो करतां पण अनंतगुणुं अभिराम,
अतिशययुक्त, सर्वोपरी, मनोहर, रमणीय, आ-
ह्लादकारी छे. उक्तंच-“जाकी देहदुतिसो दसौ
दिशा पवित्र भई; जाके तेज आगे सब तेज-
वंत रुके हैं । जाको रूप निरखी थकित महा

रूपवत; जाकी वषुवाससो सुवास और लुके
 है ॥ जाको दिव्य धुनो सुनि श्रवनको सुख
 होत जाके तन लच्छन अनेक आइ दुके है ।
 तेइ जिनराज जाके कहे विवहार गुन, निहचै
 निरखि शुद्ध चेतनसों चुके है ॥ ” एवु अत्यंत
 देदिप्यमान अनुपम औदारिक आपनुं मनोहर रूप
 जोतां-निरखतां छतां पण विषयातुरताने अवकाश
 मलतो नथी परंतु आपनी शांत, दांत, गंभीर अने
 निश्चल मुद्रानुं दर्शन पामी विषयोथी उपशान्त
 चित्त थाय छे ॥ ३ ॥

कर्म उदय जिनराजनो; भविजन धर्म
 सहाय ॥ प्रभुजी ॥ नामादिक संभारतां,
 मिथ्या दोष विलाय ॥ प्रभुजी ॥ बा० ॥४॥

अर्थ- “सवि जीव करुं शासन रसी; इसि
 भाव दया मन उलसी” एहवा अत्यंत तीव्र शुभ
 राग युक्त भावदयाना परिणाम वड़े बंधायला
 तीर्थकर नामकर्मना उदय वड़े हे त्रिलोक पूज्य !
 आ पारावार दुःखनिधान संसार समुद्रमां बूढ़ता
 अव्य प्राणियोनो उद्धार करवा माटे सर्वे दूषणो

રહિત અને પાંત્રીશ ગુણ સહિત, નય નિક્ષેપ પક્ષ
પ્રમાણ યુક્ત જીવા જીવાદિ તત્ત્વનો સમ્યક પ્રકારે
ઉપદેશ આપો છો એ આપનો કર્મ ઉદય નિર્વિવાદ
પણે “ભવિ જન ધર્મ સહાય” અનાદિ કાલથી

જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મ રજ વડે મલિન થયેલા-લિપ્ત
થયેલા ભવ્ય જીવોના આત્મ ધર્મને એવંમૂત નયે
પ્રાપ્ત થવા સહાય-નિમિત્તભૂત છે. તથા હે તીર્થ-
નાથ ! આપના નામાદિક ચાર નિક્ષેપ સંભારતાં-
સ્મરણ કરતાં-લક્ષમાં લેતાં મિથ્યાત્વાદિ દુષ્ટ
દોષોનો તત્કાલ અત્યંત અભાવ થાય. “ તીર્થ-

સંસાર નિસ્તરણો-પાયં કરાતીતિ તીર્થકૃત્”

હિતિ વચનાત્. જન્મ મરણ રૂપ સંસાર સાગરથી
તરી જવાનો ઉપાય જે સમ્યગ્દર્શન જ્ઞાન ચારિત્ર-
તે તીર્થ છે. ઉક્તંચ તત્ત્વાર્થ સૂત્રે “ (સમ્યગ્દર્શન

જ્ઞાન ચારિત્રાણિ મોક્ષ માર્ગઃ)” તે રત્નત્રયરૂપ

તીર્થને ભવ્ય જીવોના હૃદયમાં સ્થાપન કરનાર હુષ્ટ
નિમિત્ત હોવાથી આપ તીર્થકર નામને સંપ્રાપ્ત છો.
તથા આપના નિર્મલ અસંખ્યાત્ આત્મ પ્રદેશમાં તે
રત્નત્રય ભરપૂર અમેય પણે વસી રહ્યાં છે તે
સ્થાપનાનિક્ષેપો. તથા આપનો આત્મ દ્રવ્ય તે

ज्ञान मिष्यते बोध । स्थिति रात्मनि चारित्र्यं
 कुत एतेभ्यो भवति बन्धः ॥” तथा “योगात्
 प्रदेश बन्धः स्थिति बन्धो भवति तू कषायात् ।
 दर्शन बोध चरित्रं, न योग रूपं कषाय रूपं
 च ।” ॥ ४ ॥

आत्म गुण अविराधना, भाव दया
 भंडार ॥ प्रभुजी ॥ क्षायिक गुण पर्यायमे,
 नवि पर धर्म प्रचार ॥ प्रभुजी ॥ बा० ॥५॥

अर्थ-ज्ञान दर्शन चारित्र्यादि अनंत आत्म
 गुणो ते भावप्राण छे अने ते भावप्राणनो विषय
 कषायादिके घात करवो ते भावहिंसा छे. अने ते
 भावप्राणनुं समिति गुप्ति आदि संवर बडे रक्षण
 करवुं घात न थाय एम अप्रमत्त भावमां वर्तवुं ते
 भावदया छे. ते भावदयाना आप भंडार-निधान
 छो. कारण के भावप्राणना घातक मिथ्यात्वादि
 दुष्ट हेतुंउनो आपना आत्म प्रदेशमांथी संवदा
 नाश थयो छे, क्षायिक लब्धिने पाम्या छो. तेथी
 आपनी सत्ताभूमिमां मिथ्यात्वादि दोषोनो रक्क

मात्र पण प्रवेश-प्रचार थई शके तेम नथी अने तेथी आपमां भावहिंसानो विलकुल अभाव छे तेथी आप निर्विवाद पणे भावदयाना भंडार छी ॥ ५ ॥

गुण गुण परिणति परिणमे, बाधक भाव विहीन ॥ प्रभु० ॥ द्रव्य असंगी अन्यनो, शुद्ध अहिक पीन ॥ प्रभुजी ॥ वा० ॥ ६ ॥

अर्थ-आपनो आत्म द्रव्य ज्ञान दर्शन चारित्र दान लाभ भोग उपभोगादि अनंत गुणनो पिंड छे (द्रव्य गुण (समुदाओ) ते सर्वे गुणो बाधकभाव रहित पोताना शुद्ध परिणामे परिणमे छे कारण के “सर्वे सपञ्जवा गुणा, अपञ्जवे जाणणा नचिछ ” पण ते गुणो जो बाधकभावे एटले ज्ञान अज्ञानपणे, दर्शन अदर्शनपणे, चारित्र सिध्याचरण रूप एम परिणामे तो आत्म स्वगुणनो रोध करे-शुभाशुभ कर्मबंध करे-आत्मीक सहज अबाधित सुखनो हाणी करे “ (सायासायं दुःखं, तद्विरहंमि य सुहं जउत्तेण । देहिंदियेसु दुःस्कं, सुखं देहिंदिया भावो) ”

પણ આપના સર્વે ગુણો અવાધકભાવે પરિણમે છે તેથી આત્મ અનંત ગુણના આનંદના ભોક્તા છે, જ્યાંસુધી આત્મા ઘાધકભાવે પરિણમે ત્યાંસુધી અશુદ્ધ છે પણ જ્યારે સર્વે પરદ્રવ્યના રાગ-સંગ રહિત વર્તે ત્યારે શુદ્ધ છે, અહિંસક છે, કર્મબંધનો અકર્તા છે તથા પોતાના અનંત આત્મ વીર્ય વડે પુષ્ટ છે. ઉક્તંચ “ પરદઢવ રઝં વઝ્ઝઙ્ઙ; વિરઝં સુચેઙ્ઙ મઠ કમ્મેહિંણસો જિન ઉવણસોઃ સમાસઝં વંધ મોલ્લસસ ” ॥ ૬ ॥

ક્ષેત્રે સર્વ પ્રદેશમે; નહિં પરભાવ પ્રસંગ
॥ પ્રભુજી ॥ અતનુ અયોગી ભાવથી; અવ-
ગાહના અભંગ ॥ પ્ર૦ ॥ વા૦ ॥ ૭ ॥

અર્થ-જેમ સોનું સ્વાણમાં પથ્થર માટી વિગેરે અનેક કુધાતુંથી મલેલું હોય છે પણ જ્યારે યોગ્ય યુક્તિ વડે તેને સર્વથા જૂઠું પાડી ગાલી શુદ્ધ સોનું કરી લઈએ ત્યાર પછી તે સોનાને કાટ લાગી શકે નહિ.

તેમજ અનાદિકાલથી આત્મ પ્રદેશે લાગેલા જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મનો આપે શુક્લધ્યાન રૂપ અગ્નિ-

વડે સર્વથા નાશ કર્યો છે, સર્વે પ્રદેશે શુદ્ધ નિર્મલ
પરમ પવિત્ર થયા હો તેથી આપના કોઈ પણ પ્રદેશે
પરભાવ-રાગ દ્વેષાદિનો વિષય કષાયાદિનો રંચ
માત્ર પણ સંશ્લેષ નથી, થવાનો સંભવ પણ નથી.

જ્યાંસુધી આત્મા ઔદારિકાદિ શરીરમાં તેમજ
મન વચન કાય યોગમાં મમત્વ કરી વસે છે તેથી
તે ચલ પુદ્ગલ યોગે આત્મ પ્રદેશ સંકંપ થાય છે
પણ જ્યારે સર્વથા તેનું મમત્વ ત્યાગ કરે ત્યારે
શુદ્ધાત્મ ભાવે અરૂપી ભાષક સ્વરૂપ પ્રગટે. ઉક્તંચ
આચારાંગે-સે ણેદીહે ણ હસ્તે ણ વટ્ટે ણ તંસે
ણ ચંડરસે ણ પરિમંડલે ણ કિન્હે ણ ણીલે
ણ લોહિણે ણ હાલિદે ણ સુકિલે ણ સુરહિગંધે
ણ દુરહિગંધે ણ તિત્તે ણ કડુણે ણ કસાયે ણ
અંવિલે ણ મહુરે ણ કચ્છેડે ણ મનુણે ણ
ગુરુણે ણ લહુણે ણ સીણે ણ ઉપ્પે ણ ણિધ્ધે
ણ લુચ્છવ ણ કાઠ ણ રૂહે ણ સંગ ણ ઇત્થી
ણ પુરિસે ણ અન્નહા પરિણે સળ્લે ઉવમા ણ
વિજ્ઞાણે અરૂવી સત્તા અપથસ્સ પયં ણથિથ
સે ણ સદ્દે ણ રૂવે ણ ગંધે ણ રસે ણ ફાસે

इच्छेतावात तिबेमि ” एम अतनु अयोगी आत्म
अंग आत्म भावमां स्थिर थाय त्यारे कोइ पण
आत्म प्रदेश रंच मात्र पण सचल थाय नहि. अभंग
अवगाहनाने प्राप्त थाय. ॥ ७ ॥

उत्पाद व्यय ध्रुवं पणे, सहजे परिणति
थाय ॥ प्रभुजी ॥ छेदन योजनता नहि,
वस्तु स्वभाव समाय ॥ प्रभु० ॥ वा० ॥ ८ ॥

अर्थ-स्वभाव भावे परिणमवामां अन्य द्रव्यनी
सहाय जोइति नथी. जेम अग्नि सहजे दाहकभावे
परिणमे छे तेम सर्वे द्रव्यो उत्पाद व्यय ध्रुव्य युक्त
सदाकाल होवाथी सहजे पोताना स्वभाव पर्याय-
मां परिणमे. अन्य द्रव्यनी मदद जोइए नहि.
उक्तं च ॥ दवियदि गच्छदि ताई, स्वभाव
पज्जयइंजं; दवियं तं भणंते अणणभूदं तु
सत्तादो ” वस्तुने सहजे परिणमवामां कंइ पण
दूर करवानी तथा कंइ पण संयोग करवानी
आवश्यकता नथी कारण के द्रव्य तथा पर्यायनी
अभेद भाव छे. जेम अग्निने दाहक परिणाम
पगरी तथा अग्नि वगर दाहक परिणामने आपणे

कदापी काले जोता नथी अर्थात् अग्निने ज्यारे जोइए त्यारे दाहक परिणाम सहितज होय छे तेम सर्वेद्रव्य सदाकाल पोताना परिणामे वर्त्तताज होय छे. परिणाम वगर द्रव्य अभाव-शून्यपणाने पामे. उक्तंच-पज्जय विजुदं दव्वं दव्व विजुदाय पज्जयाणच्छि दोण्हं अणाणभूदं; भावं समणा परूविंति ॥ ” वर्त्तमान पर्यायनो व्यय थाय अने नूतन पर्यायनो उत्पाद् थाय तो पण द्रव्यार्थिक नये द्रव्य सदा ध्रुव छे. जेम सोनानुं कडु भांगो मुकुट वनावीए तेमां कडानो नाश अने मुकुटनो उत्पाद् थता छतां पण सोनुं द्रव्य सदा ध्रुव छे. उक्तंच-“ भावस्स णत्थिणासो, णत्थि अभावस्स चेव उप्पादो । गुण पज्जयेसु भावा, उप्पाद वये पकुव्वंति । ” ॥८॥

गुण पर्याय अनंतता, कारक परिणति तेम ॥ प्रभुजी ॥ निज निज परिणति परिणमे, भाव अहिंसक एम ॥ प्रभुजी ॥ बा० ॥६॥

अर्थ-ज्ञान ते सम्यक्ज्ञान रूप, दर्शन ते

सम्यक्दर्शन रूप, चारित्र्य ते स्वभावाचरण रूप
 एम ज्ञानानुयायी आपना अनंत गुणो पोताना शुद्ध
 परिणामे परिणामे छे कारण के आपनुं कारक चक्र
 ते शुद्ध अवाधक पणे सदा परिणामे छे (१) स्वधर्म
 कर्ता ते कर्त्तापणुं (२) स्वधर्म परिणाम ते कार्य
 (३) स्वधर्मानुयायी चेनना शक्ति ते करण (४)
 साध्य गुण शक्तिनुं प्रगटुं ते संप्रदान (५) पूर्व
 पर्यायनुं निवर्त्तन ते अपादान (६) स्वगुणनो आधार
 आत्म सत्ताभूमि ते अधिकरण-एम् गुण पर्यायनी
 तथा कारक परिणतिनी अनंतता छे तेथी कोइ पण
 आत्म धर्मने विराधक पणे रंच मात्र-समय मात्र
 पण परिणमता नथी तेथी आप सदा अहिंसक
 नामनुं सर्वोत्कृष्ट विरुद्ध धरावो छो ॥ ९ ॥

एम अहिंसकता मर्या, दीठो तुं जिनराज
 ॥ प्र० ॥ रक्षक निज पर जीवोनो, तारण
 तरण जिहाज ॥ प्र० वा० ॥१०॥

अर्थ:-एम स्वपर जीबना द्रव्य भाव प्राणनुं
 रक्षण करनार तथा अगाध कषाय रूप जलथी
 भरेला संसार समुद्रमांथी तारण तरण जहाज
 रूप हे जिनेश्वर ! हे करुणा निधान ! आ जगत्
 त्रयमां सर्वांगे दयामय नै आपनेज जोय ॥ १० ॥

परमात्म परमेश्वर, भाव दया दातार
॥ प्रभुजी ॥ सेवो ध्यावो एहने, देवचंद्र
सुखकार ॥ प्रभुजी० ॥ वा० ॥ ११ ॥

अर्थ:-आत्मानो परमभाव जे ज्ञान तेनी शुद्ध-
ता तथा संपूर्णताने सर्वे नये प्राप्त थयेला होवाथी
परमात्मा. तथा अनंत अविनश्वर स्वाधीन परमा-
नंद मय शुद्धात्म ऐश्वर्यताने प्राप्त थएला होवाथी
परमेश्वर, अने भावदया रूप जे परमधर्म (आत्म
गुण रक्षणा तेह धर्म, स्वगुण विद्वंसना ते
अधर्म) तेना उपदेष्टा, दातार तथा भव भ्रमण
जन्य शारीरिक तथा मानसिक दुःखनो अत्यंत
अंत करी सहज परमोत्कृष्ट आत्मीक सुखना दातार
त्रिलोक पूज्य श्री बाहुजिनेश्वरने सेवो, ध्यावो,
तेमना गुणनुं ध्यान करो, तेथी एकाग्र चित्त करो,
एम श्री देवचंद्र मुनि मित्र भावना बडे भव्य जीवो
प्रति हित शिक्षा आपे छे ॥ ११ ॥

[(संपूर्ण)]

॥ अथ चतुर्थ श्री सुबाहुजिन स्तवनं ॥

॥ माहरो बहालो ब्रह्मचारी ॥ ए देशी ॥

श्री सुबाहुजिन अंतर जामी, मुज मननो
विशरामी रे ॥ प्रभु० ॥ आतम धर्म तणो
आरामी, पर परिणति निःकामी रे ॥ प्रभु
अंतरजामी ॥ श्री० ॥ १ ॥

अर्थ:-शुद्ध अने तिक्षण उपयोगमां परम
स्थिरता एकाग्रता धारण करी राग द्वेष रूप महान्
शत्रुउंने जीतेला हे श्री सुबाहु स्वामी ! केवलज्ञान
दर्शन उपयोग बडे मारा तेमज सर्वे द्रव्योना
अंतर्गत भावने द्रियादिकनी सहाय विना प्रत्यक्ष
जाणवा देखवावाला तथा सर्वदा परम संवरमां
लीन होवाथी अंतर्गामी छो.

स्त्री पुत्र भित्तादि परिजनो तथा धन धान्य
हिरण्य क्षेत्रादि परद्रव्यना मनोज्ञ पर्यायोने आप
सुख हेतु जाणता नथी परंतु तेउंने जलना बुद्बुद-
वत् तथा बिजलीना चमत्कारवत् क्षणीक, पराधीन
अतृप्तिना हेतु, तथा आत्म धर्म रोधक राग द्वेषना
निमित्त, संसार परिभ्रमणना निमित्त साक्षात् पणे
जाणो छो माटे ते विषयोना आपने कामना केस
थाय ? कदापि न थाय; तथी आप सदा निःकामी

छो. जे मुग्ध प्राणीउं ते विषयोने सुख हेतु जाणे तेउंने तेली कामना थाय अने तेज तेनी चाहरूप दाहमां प्रवेश करी पोताना आत्म भोगने दग्ध करे पण आप तो केवल सम्यक्ज्ञानी होवाथी शुभा-शुभ-शाता अशाता बनेना उदयने आत्मगुणना रोधक होवाथी दुःख रूपज जुउंछो तेथी आपने तेनी कामनानो विलकुल संभव नथी, निरंतर निष्कामी छो. तथा शुद्धात्म ज्ञान दर्शन चारित्र गुणने स्वाधीन अविनश्वर तथा परमानंदना हेतु जाणी निरंतर तेमांज रमण करवावाला तथा तेनाज भोगमां परम संतुष्ट छो. एवी आपनी परमोत्कृष्ट अवस्था जोइ ते पद साधवानी मने रुची थइ तथा ते पद साधवानो समीचीन मार्ग पण आपे बताव्यो तेथो खरेखर मारा मनने परम विश्रामना हेतु आपजछो. ॥ १ ॥

केवलज्ञान अनंत प्रकाशी, भविजन कमल विकाशी रे ॥ प्र० ॥ चितानंदघन तत्त्व बिलासी, शुद्ध स्वरूप निवासी रे ॥ प्र० ॥ श्री० ॥ २ ॥

अर्थ-अनंत केवलज्ञान रूप सूर्यनो प्रकाश करी
भव्य जीवोना हृदयकमलने विकश्वर करनार ज्ञाना-
नंदना समूह आत्म तत्त्वमां विलास करनार तथा
तेज शुद्ध स्वरूपमां निवास करनार छो.

अनादि कालधी ज्ञानावरणादि कर्मवडे आच्छा-
दित थयेला अनंत केवलज्ञान रूप जलहलाटमान
अद्वितीय सूर्यने, कर्म पडलनो नाश करी संपूर्णपणे
प्रकाशमान करी अज्ञानरूप अंधकार वडे आवृत
थएला भव्य जीवोना हृदयकमलने ज्ञानकिरणो वडे
परम प्रफुल्लित करनार छो. रूप रस गंध स्पर्शादि
परद्रव्यना पर्यायनो भोग, रमण, आस्वाद, सूझा,
कामना बिगेरेनो समूल नाश करी राग द्वेषादि
विभावनो परिहार करी पोताना सहज अविनश्वर
ज्ञानसमूह आत्म तत्त्वमां विलास करनार अर्थात्
तेना भोगमां निमग्न छो. तेज शुद्धामत स्वरूपमां
सदा निवास करो छो अर्थात् आपनो उपयोग
त्यांधी समय मात्र पण चलतो नथी-परद्रव्यादि
तरफ जतो नथी ॥ २ ॥

यद्यपि हूं मोहादिके छलियो, पर परिण-
तिशुं भलियो रे ॥ प्र० ॥ हवे तुज सम मुज

साहिव मलियो, तिणे सवि भवभय टलियो
रे ॥ प्रभु अंतरजामी ॥ ३ ॥

अर्थ--जो के हुं मोहादि बडे ठगायो, परपरिण-
तिमां तल्लीन थई रह्यो, पण हवे तमारा जेवा
साहेवनी चाणी सांभली मने प्रतित थवाथी मारी
सर्वे भवभय दूर थयो. जो के मोह अज्ञान मिथ्या-
त्वादि दुष्टोण मने बश करी मारी ज्ञानादि संपदा
ठगी लीधी छे, माहरा सहज अनुपम सुख भोगथी
मने वियोगी कर्षो छे, तेथी हुं ते दुष्टोना बशमां
पडी अत्यंत कंगाल अवस्थाने भोगवुं छु.

परपर्याय--शरीर स्वजन परिजन तथा धन
धान्यादिमां अहं ममत्त्व करी तेनेज सुख तथा
सुख हेतु जाणी तेनीज इच्छा कामना करी जेम
लीमडामां वसतो कीडो लीमडाना रमनेज मधुर
मानी तेमां तल्लीन रहे छे, त्यांथी निकलवा चाहातो
नथी, तेम हुं तेमां तल्लीन थई रह्यो, तेथी विरत
थयो नहि, पण हवे हे करुणानिधे ! सर्वज्ञ अने
वीतराग आप जेवा समर्थ स्वामीनी मने प्राप्ति
थई--आपनु दर्शन पाय्यो तेथी अनंत रोग शोक
भय क्रोध मान माया लोभ अरति आदि के भरेला
भव समुद्रमां अमण करवानो भय दूर थयो. कारण

के ते भव भ्रमणनी हवे अवधि आवी. उक्तंच-
 "अंतो मुहुत्त मित्तंपि फासिअं दुइ जेहिं
 समत्तं, तेसि अवहु पुग्गल, परिअट्ठो चैव
 संसारो " ॥ ३ ॥

ध्येय स्वभावे प्रभु अवधारी; दुर्ध्याता
 परिणति वारी रे ॥ प्र० ॥ आसन वीर्य एकता
 कारी; ध्यान सहज संभारी रे ॥ प्र० ॥
 श्री० ॥ ४ ॥

ध्याता ध्येय समाधि अभेदे; पर परिणति
 विछेदे रे ॥ प्र० ॥ ध्याता साधक भाव उछेदे,
 ध्येय सिद्धता वेदे रे ॥ प्र ॥ श्री० ॥ ५ ॥

अर्थ:-प्रभुपदने पोतानुं शुद्ध ध्येय जाणी
 पोताना हृदयमां स्थापना करी, दुर्ध्यान रूप परिण-
 तिने निवारी, पोताना ज्ञान वीर्यनी संपूर्ण एकता
 अभेदता करनारुं सहज आत्म ध्यान संभारे; तेथी
 पर परिणतिनो समूल विच्छेद थाय, तयारे ध्याता
 ध्येय समाधिमां तल्लीन थाय अने ध्येय पदनी
 सिद्धि प्राप्तिने वेदे..योगवे स्मारे ध्यानामांभी

साधकपद दूर थाय.

ज्ञानावरणादि सकल कर्मना संबन्धथी सर्वथा मुक्त केवलज्ञान दर्शन चारित्र वीर्यमय सहज आत्म गुणना समूह रूप श्री सुबाहु स्वामीना परमात्म पदने शुद्ध ध्येय (ध्याववा लापक वस्तु) धारी-ज्ञान पूर्वक निश्चय करी, जन्म जरा मरण रूप संसार भ्रमणना हेतु भूत, शुद्ध परिणतिथी विमुख आर्त्त रौद्र परिणाम वारे--दूर करे, (कारण के ज्यांसुधी दुर्ध्यान एरिणाम वर्त्ते त्यांसुधी शुद्ध ध्यानने अवकाश मलै नहि जेम तलीन वस्त्र ऊपर केशरनो रंग लागे नहि) अने पर परिणामानुगत थयेला पोताना आत्म वीर्यने समेटी मात्र शुद्ध ज्ञान दर्शन चारित्र परिणाममां आत्म वीर्यने एकत्र तल्लीन करे-अभेद करे एवं सहज आत्म ध्यान आदरे, जेथी ध्येय समाधि अर्थात् शुद्धात्म अनुभव रूप निर्विकल्प निराकुल निरूपचरित स्वतंत्र परम समाधिमां मग्न-तल्लीन थाय; ते वारे आत्म परिणति मनोज्ञ अमनोज्ञ कोइ पण पर द्रव्यमां राग द्वेष रूप अशुद्ध परिणामे वर्त्ते (गमन करे) नहि, ते वारे ध्येय पदनी अर्थात् शुद्ध परमात्म पदनी सिद्धि थाय. तेना अचल अनंत भोग

ઉપભોગનો સ્વામી થાય. ઉક્તંચ-એકો મોક્ષ પથો.
 ચ એષ નિયતો, દ્રજાતિ વૃત્ત્યાત્મક; સ્તત્રૈવ
 સ્થિતિ મેતિ યસ્તમનિશં, ધ્યાયેચ્ચતં ચેતસિ,
 તસ્મિન્નૈવ નિરંતરં વિહરતિ દ્રવ્યાન્તરાણ્ય
 સ્પૃશન્ । સોવદ્યં સમયસ્ય સારમચિરાન્નિત્યો-
 દયં વિન્દતિ ।

અર્થ:-સમ્યક્દર્શન જ્ઞાન ચારિત્રાત્મક મોક્ષ
 માર્ગમાં જે પુરુષ સ્થિત થાય છે, તેનેજ જે નિરંતર
 ધ્યાવે છે વલી તેનેજ જાણે, છે તેનેજ અનુભવે છે
 વલી તેનાજ વિષે વિહાર કરે છે-પ્રવર્તે છે પણ
 અન્ય દ્રવ્યમાં રંચ માત્ર સ્પર્શ કરતો નથી તે અત્પ
 કાલમાં નિત્યોદય પરમાત્મ પદને પામે છે સ્યારે
 ધ્યાતામાંથી સાધક ભાવનો ઉચ્છેદ થાય છે; કારણ
 કે ધ્યેયનો સંપૂર્ણ સિદ્ધિ થયા પછી સાધવાનું કંઈ
 બાકી રહું નથી. જ્યાંસુધી કંઈ સાધવાનું બાકી
 હોય ત્યાંસુધી સાધક ભાવ કહેવાય જેમ (કારણ
 પદ ઉત્પન્ન, કાર્ય થયે ન હોય). ॥૪૯॥ ॥૫૦॥
 દ્રવ્ય ક્રિયા સાધન વિધિ યાત્રી, જે જિન
 આગમ વાત્રી રે ॥ ૫૦ ॥ પરિણતિ વૃત્તિ વિભાવે

राची, तिण नावि थाये साची रे ॥ प्र० ॥
 श्री० ॥ ६ ॥

अर्थ:-शुद्ध ध्येय जे परमात्म-मोक्ष पद तेनुं
 यथार्थ स्वरूप श्रद्धान पूर्वक में न जाण्युं तथा
 साध्य सापेक्ष आचरणा न आदरी त्यांसुधी माहरी
 चित्त वृत्ति विभावमां राची रही अर्थात् आ लोक
 संबंधी पंच इंद्रियोना मनोज्ञ भोग्य पदार्थी तथा
 परलोक संबंधी स्वर्गादिना भोगमां आशक्त रही-
 तेनी मनोकामना रही तेथी आपना सत्य प्रमा-
 णिक आगममां बतावेली समिति गुप्ति परिषद्
 सहन तथा चारित्र तप नियमादि परमात्म पदनी
 साधन भूत द्रव्य क्रियाउं पण विष गरल अने
 अन्योन्य अनुष्ठान रूप होवाथी परमार्थ-मोक्ष पदने
 आपवा समर्थ थई नहि. ज्यांसुधी सम्यग्ज्ञाननी
 प्राप्ति थई नथी त्यांसुधी सर्वे क्रियाउं शुद्ध भाव
 विनानी अशुद्ध विष गरल अन्योन्य अनुष्ठान रूप
 जाणवी उक्तंच “ शुद्ध क्रिया तो संपजे, पुद्गल
 आवर्तने अद्व रे ” ॥ ६ ॥

पण भय नहि जिनराज पसाये, तत्त्व रसा-
 यण पाये रे ॥ प्र० ॥ प्रभु भगते निज

चित्त वसाये, भाव रोग मिट जाये रे

॥ प्रभु० ॥ श्री० ॥ ७ ॥

अर्थ:- पण हवे मने भय नथी कारण के जिन-
राजना वचन पसाये तत्त्व रसायणनी प्राप्ति थई
छे तेथी माहरुं चित्त प्रभुनी भक्तिमां वसवाथी
भाव रोग मटी जशे. पण हवे हे तरण तारण श्री
सुबाहु जिनेश्वर ! बन्नीश दोष रहित तथा वाणीना
पांन्नीश गुण सहित परमामृत रूप आपना वचनोना
पसाये ज्ञानावरणादि कर्म रोगने अत्यंत दूर करी
आत्म वीर्यनी संपूर्ण वृद्धि पुष्टि करनार देवतत्त्व,
गुरु तत्त्व, अने धर्मतत्त्वनी मने प्राप्ति थई छे तेथी
माहरी चित्त वृत्ति मनोज्ञ अमनोज्ञ पर द्रव्यथी
निवृत्त थई प्रभुनी आज्ञा पालवा रूप भक्तिमां लीन
थशे तेथी माहरा ज्ञानावरणादि सर्वे भाव रोगो
सूर्यथी जेम अंधकार नष्ट थाय तेम तत्काल विना-
प्रयासे नष्ट थई जशे. एवा निश्चयथी मारो भव
अमणनो अत्यंत भय दूर थयो छे ॥ ७ ॥

जिनवर वचन अमृत अनुसरिये, तत्त्व
रमण आदरिये रे ॥ प्र० ॥ द्रव्य भाव

આલવ પરિહરિયે, દેવચંદ્ર પદ વરિયેરે ।

શ્રી૦ ॥ ૮ ॥

અર્થ:-જિનેશ્વરના અમૃત સમાન વચન સારે વર્તીએ, તત્ત્વ રમણના ગ્રાહક થઈએ, દ્રવ્ય તથા ભાવાલ્લવનો ત્યાગ કરીએ તો દેવમાં ૮ સમાન સિદ્ધ પદ વરિયે-

હે સુબાહુ જિનેશ્વર ! આપ સર્વજ્ઞ અને વીર હોવાથી સાચા આસ છો. આપનાંજ વચન આ ગતિ રૂપ અત્યંત ભયંકર પારાધાર ભવ સસુ પાર ઉતારી શિવ સ્થાનકે પહોંચાડવાને અદ્વિતીયા સમાન છે તથા દુષ્ટ જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મ વડે પીડાતા દુર્બલ આત્મ વીર્યથી હીણ થયેલ તે રોગ દૂર કરી આત્મ વીર્યે સંપૂર્ણ પુષ્ટ કરવું અમૃત સમાન છે. માટે જો આપના વચનને, ૧ અનુસરીયે-તે પ્રમાણે વર્તીએ અને શુદ્ધાત્મ તત્ત્વ રમણ કરીએ-તેમાં લીન થઈએ તથા અભિનિવેશા પાંચ મિથ્યાત્વ, હિંસાદિ પાંચ અવ્રત, તથા ક્રોધ દિક કષાય, વિકથાદિ પ્રમાદ તથા ઔદારિક કા-યોગ આદિ યોગનો પરિહાર કરીએ-રાગ દ્વેષા વિભાવનો ત્યાગ કરીએ તો નવાં કર્મ આવતાં બં થાય અને પૂર્વ સંચિત કર્મની નિર્જરા થાય તેર્થ

देवमां चंद्रमा समान परमात्म पदनी प्राप्ति थाय
 अतीन्द्रिय अव्याबाध अनंत सुखनी प्राप्ति थाय
 उक्तंच “ पंचासव्व विरत्ता, विषय विजुत्ता
 समाहि संपत्ता, राग दोष विमुत्ता, सुणिणो
 स्नाहंति परमच्छ ” ॥ ८ ॥

(संपूर्ण)

॥ अथ पंचम श्री सुजात स्वामी जिन स्तवन ॥
 देहुं देहुं नणद हठीली ॥ ए देशी ॥

स्वामी सुजात सुहाया, दीठा आणंद उपाया
 रे, मन मोहना जिनराया । जिणे पूरण तत्त्व-
 निपाया, द्रव्यास्तिक नय ठहराया रे, मन
 मोहना जिनराया ॥ स्वामी० ॥ १ ॥

पर्यायास्तिक नय राया, ते मूल स्वभाव
 समाया रे, मन मोहना जिनराया । ज्ञानादिक
 स्व परजाया, निज कार्य करण वरतायारे,
 मन मोहना जिनराया ॥ स्वामी० ॥ २ ॥

અર્થ:-હે સુજાત સ્વામી ! સર્વે સ્વપર્યાયનું
 કારણ દ્રવ્ય છે પણ દ્રવ્યનું કારણ અન્ય દ્રવ્ય હોઈ
 શકે નહિ તેથી આપ સ્વયં સિદ્ધ છો. સ્વયં બુદ્ધ છો,
 સર્વ પર દ્રવ્યની કામનાથી રહિત પરમ સંતુષ્ટ છો,
 તથા અતીન્દ્રિય અવ્યાવાધ, અનુપમ, નિરૂપચરિત,
 સ્વાધીન, અપૃથગ્ભૂત, અનંત, સહજ, આત્મ સુખના
 નિરંતર ભોક્તા, અનુભવ લેનાર છો, સુખાત્મા છો,
 ઉક્તંચ “ જાદો સયં સ ચેદા, સવણદ્ધ સવ્ય
 ભોગ દરસીય । પપ્પોદિ સુહમણંતં, અવ્યાવાહં
 સગમ મુત્તં ” ॥ માહરા ચિત્તને સુહંકર લાગ્યા
 છો, અનંત ગુણના નિધાન આપ સ્વજાતિનું દર્શન
 થતાં અપૂર્વ આનંદ રૂપ જલ વડે માહરું ચિત્ત સરો-
 વર ભરપૂર થયું, અજ્ઞાન કષાયના પાત્ર પર દ્રવ્યા-
 દિનો ચાહ દાહમાં નિરંતર પ્રજ્વલિત થતાં શુદ્ધાત્મ
 અનુભવ રૂપ સુગંધથી રહિત હરિહરાદિ કુદેવોને
 કરીરાદિ વૃક્ષોની પેઠે ત્યાગી શુદ્ધાત્મ અનુભવ રૂપ
 અનંત સુગંધથી ભરપૂર આપના પદ કમલમાં માહરું
 મન મોહિત થયું છે, સ્વાંથી રંચ માત્ર પણ લ્હસવા
 ચાહાતું નથી; માટે હે જિનેશ્વર ! જગત્ ત્રયમાં
 આપજ ભવ્ય જીવોના મન મોહન છો. જે આપે
 અનાદિ કાલથી લાગેલા આત્મ ગુણ રોધક જ્ઞાના-

वरणादि कर्म मलने बाह्य अभ्यंतर तप षडे दूर
 करी पोताना आत्म तत्त्वनी एवंभूत नये सिद्धि
 करी छे अर्थात् सर्वे आत्म गुणो संपूर्ण निर्मल तथा
 स्वाधीन करी लीधा छे माटे हवे कई पण करवानुं
 आपने वाकी रह्युं नथी तैथी आप निष्क्रिय बिरुदने
 संपूर्ण प्राप्त थया छो, अनंतानंदना स्वामी थया छो
 तथा आत्म धर्मने मलिन करवाना तथा भव भ्रम-
 णना निमित्त अज्ञान मिथ्यात्व कषाय अने योगनो
 सर्वथा अभाव कर्यो छे तैथी आपनो कोइ पण गुण
 पर्याय हवे कोइ पण काले रंचमात्र पण मलिन
 थवानो नथी तथा तेमज ते सिद्धि अवस्थाथी आप
 कोइ पण काले व्यूत थवाना नथी. द्रव्यास्तिक
 नये आप सदा अवस्थित रही चेतनतामां समाता
 पोताना शुद्ध अनंत पर्यायनुं राज्य भोगवो छो.
 ज्ञानादिक सर्वे पर्यायोने स्वकार्य करवामां निरंतर
 प्रवर्त्तावो छो अर्थात् ज्ञान गुण वडे अनंत द्रव्यना
 त्रिकालवर्ती अनंत गुण पर्यायने समकाले प्रत्यक्ष पणे
 जाणो छो, दर्शन गुण वडे सर्वे द्रव्यना अस्तित्वादि
 सामान्य स्वभावने समकाले देखो छो, चारित्र गुण
 वडे सर्व परभावथी निवृत्त पणे अनंत ज्ञानादिक
 स्वधर्ममां निरंतर रमण करो छो अने आपनुं आत्म

વીર્ય તે પણ જ્ઞાનાદિક અનંત સ્વધર્મ પરિણમાવવામાં
 વર્તે છે. એમ આપના સર્વે પર્યાયો પોત પોતાનું કાર્ય
 કરવામાં સ્વાધીન પણે વર્ત્યાઓ છો વલી છે સર્વે
 નીતિમાનમાં શિરોમણિ ! દ્રવ્યના યથાર્થ સ્વરૂપનો
 ઘોઘ થવા માટે આપે દ્રવ્યાસ્તિક અને પર્યાયાસ્તિક
 એ બે મૂલ્ય નયો ઠરાવ્યા છે. જેમાં સર્વે નયનો સમા-
 વેશ થઈ જાય છે તે નયના યથાર્થ જ્ઞાનવડે વસ્તુનું
 સ્વરૂપ યથાર્થ સાક્ષાત્ થત્ જણાય છે-ભાસે છે ॥૧॥
 અંશ નયમાર્ગ કહાયા, તે વિકલ્પ ભાવ સુણા-
 યારે ॥ મન ૦ ॥ નય ચાર તે દ્રવ્ય થપાયા,
 શબ્દાદિક ભાવ કહાયારે ॥ મન ૦ ॥ ૩ ॥

અર્થ-નય તે પદાર્થના જ્ઞાનને વિષે જ્ઞાનના અંશ
 છે, વસ્તુ અનંત ધર્માત્મક છે અર્થાત્ જીવાદિક દરેક
 પદાર્થમાં અનંતા ધર્મ છે. તેમાંથી જે સ્વામિષ્ટ એક
 ધર્મને મુખ્યતાએ ગણે છે તેમાં રહેલા બીજા ધર્મ,
 પ્રતિ ઉદાસિનતા રાખે છે તે નય છે હસ્તંચ-સ્યાદ્વાદ
 મંજરીમાં “ નીયતે પરિચ્છિદતે એક દેશ વિશિષ્ઠોર્થ
 આભિરિતિ નીતયો નયાઃ તથા રત્નાકરે, નીયતે
 યેન શ્રુતાશ્ચ પ્રમાણ વિષયી કૃતસ્યાર્થ સ્યાં-
 શસ્ત્રદિતરાંશોદાસીન્યતઃ સ પ્રતિપત્તુરભિપ્રાય

વિશેષો નયઃ” એમ દરેક નયો વસ્તુના સ્વાભિષ્ટ એક
અંશને પ્રતિપાદન કરે છે તેથી તે વિકલ્પ માગે છે. જે
एकांते પોતાના અભિષ્ટ ધર્મને જ સ્થાપન કરે છે ને માં
રહેલા ધીજા ધર્મોને તિરસ્કારે છે. ઓલવે છે, અપેક્ષા
રાખતો નથી તે દુર્નય અથવા નયાભાસ છે. સ્વાભિ-
પ્રેતાદંશા દિતરાંશા પલાપો પુનર્નયાભાસ :”

અને જે વસ્તુમાં રહેલા કોઈ પણ ધર્મને તિરસ્કારતો નથી
અર્થાત્ તેની અપેક્ષા રાખે છે એમ બતાવવાને સ્વાત્-
પદ યુક્ત અભિષ્ટ ધર્મનું પ્રતિપાદન કરે છે તે સુનય
છે, સ્યાદ્વાદ છે, પ્રમાણ વાક્ય છે, ને જ હે જિનેશ્વર !
આપના પરમ આગમનું ધીજ [જીવન] છે, જે સર્વે
एकांत વાદે મચેલા ઉનમત્ત હાથી ઉના મદને મંજન
કરવાને સિંહ મમાન છે, વસ્તુનું યથાર્થ સર્વાંગે સ્વરૂપ
જાણ્યા દિવ્ય જ્ઞાનદ્રષ્ટિ છે, ઉક્તંચ-સ્યાદ્વાદમંજરૌ-
રાગ-ઉપેન્દ્રવજ્રા ॥ ‘ સદેવ સરસયાત્ સદિતિ

ત્રિધાર્થી, મીયેત દુર્નીતિ નય પ્રમાણૈ; યથાર્થ
દર્શાતુ નયપ્રમાણ, પથેન દુર્નીતિ પથં ત્વમાસ્થઃ

અર્થ-સત્યજ છે, સત્ છે અને સ્યાત્ સત્ છે એવી
રીતનો ત્રણ પ્રકારનો અર્થ અનુક્રમે દુર્નય, નય અને
પ્રમાણ વડે માપી શકાય છે અને યથાસ્થિત પદાર્થ

ને જોનારા પૃથ્વા છે પ્રમુ ! આપેજ નય અને પ્રમાણના માર્ગ વહે દુર્નય માર્ગને દૂર કર્યો છે તે નયના વિસ્તારથી અનેક ભેદ છે (દ્વ્યાસતો નેક વિકલ્પઃ) કારણ કે વસ્તુ અનંત ધર્માત્મક છે અને તે અનંત ધર્મેનું નિરૂપણ કરવાને વચન માર્ગ પણ અનંત હોય માટે જેટલાં વચન તેટલા સર્વે નયવાદ કહેવાય “જાવડ્યા વયળ પદા, તાવડ્યા ચેવ હુન્તિ નયવાયા” તો પણ તે સર્વે નયવાદોનો સંગ્રહ કરનારા પૃથ્વા સાત અભિપ્રાયની કલ્પનાના દ્વારે કરીને સાત નયો પ્રતિપાદન કરેલા છે તેનાં નામનૈગમ, સંગ્રહ, વ્યવહાર, રુજુસૂત્ર, શબ્દ, સમભિરૂઢ અને એવંભૂત. તેમાંથી પ્રથમના ચાર નયો દ્રવ્યાર્થિક નયમાં અને શબ્દાદિ ત્રણ નયોને પર્યાયાર્થિકમાં સમાય છે તે ત્રણ ભાવનય છે.

સમાસતો દ્વિભેદઃ દ્રવ્યાર્થિકઃ પર્યાયાર્થિકઃ
તત્ર દ્રવ્યાર્થિક શ્વતુર્થા નૈગમ, સંગ્રહ, વ્યવ-
હાર, રુજુસૂત્ર ભેદાત્ પર્યાયાર્થિકસ્ત્રિધા
શબ્દ સમભિરૂઢ એવંભૂત ભેદાત્”

શ્રી સિદ્ધસેન દિવાકર રુજુસૂત્રનયને પર્યાયાર્થિકમાં

ગણે છે માટે તેમના અભિપ્રાયે નૈગમાદિ ત્રણ નય દ્રવ્યાર્થિક અને રુજુસૂત્રાદિ ચાર નય પર્યાયાર્થિક છે. દ્રવ્યને સામાન્યપણે નિરૂપણ કરનારા પ્રમાતાના અભિપ્રાયો જેઓનો આદ્યના ચાર નયમાં સમાવેશ થાય છે તે દ્રવ્યાર્થિક છે અને જે અભિપ્રાયો શબ્દના અર્થની મૂલ્યતા ધરાવે છે તે શબ્દાદિક ત્રણ નય પર્યાયાર્થિક છે માટે આદિના ચાર નય તે અવિશુદ્ધ છે અને શબ્દાદિક ત્રણ નય તે વિશુદ્ધ છે ઉક્તંચ-આદ્ય નય ચતુષ્ટય માર્વિશુદ્ધ પદાર્થ પ્રરૂપણા પ્રવણત્વાત્ અર્થ નયા નામ દ્રવ્યત્વ સામાન્ય રૂપા નયાઃ શબ્દાદયો વિશુદ્ધ નયાઃ શબ્દાવ-લંબાર્થ મૂલ્યત્વાત્

તથા ચ સ્યાદ્વાદમંજરૌ યે કેચનાર્થ, નિરૂપણ પ્રવણાઃ પ્રનાત્ર મિપ્રાયાસ્તે સર્વેઽપ્યાદ્યનયઃ ચતુષ્ટયેઽન્તર્ભવતિ યે ચ શબ્દવિચાર ચતુરાસ્તે શબ્દાદિ નય ત્રય ઇતિ ॥

द्रव्यं तदेवार्थः, सोऽस्ति यस्य विषयत्वेन
स द्रव्यार्थिकः ”

“ पर्येति उत्पाद विनाशौ प्राप्नोतीति पर्यायः
स एवार्थः स अस्ति यस्यासौ पर्याया-
र्थिकः ” ॥ ३ ॥

दुर्नय ते सुनय चलाया, एकत्व अभेदे
ध्यायारे ॥ मन० ॥ ते सांव परमार्थ समाया,
तंसु वर्त्तन भेद गमायारे ॥ मन० ॥ ४ ॥

अर्थः—सुनयनं लक्षण कहे छे. “ स्वार्थ ग्राही
इतरांशाप्रतिक्षेपी सुनय इति सुनय लक्षणं ”
कुनयनं लक्षण कहे छे. “ स्वार्थ ग्राही इतरांश-
प्रतिक्षेपी दुर्नय इति दुर्नय लक्षणं ” अर्थः—स्वा-
भिष्ट धर्मने गवेष्टतां बीजा धर्मोनी अपेक्षा नहि
राखनार बीजा धर्मोनी ओलवना जे दुर्नयो तेने
दूर करी स्वाभिष्ट धर्मथी इतर सर्वे धर्मोनी अपेक्षा
राखी स्यात्पदे शोभता सुनय—अनेकांत वादनी
प्रवृत्ति करी ते अनेकांत—स्याद्वादनये वस्तुनं

अभेद अर्थात् कोई काले जूदा नहि पडे एम चित्तमां
चित्तन करी धारणा करी ते सर्वे नयोने परमार्थ
एदले शुद्ध द्रव्यस्वरूपमां समाव्या, तज्जन्य एक
शुद्धात्म अनुभूतिने भोगववा लाग्या, नयोनी वर्त्तना
रूप विकल्पनो नाश थयो उक्तंच-उपेन्द्रवज्रा.

य एव मुक्त्वा नय पक्षपातं, स्वरूप गुप्ता
निवसन्ति नित्यं विकल्पजाल च्युत शान्त-
चित्ता, स्तएव साक्षादमृतं पिवन्ति ॥ ४ ॥

स्याद्वादी वस्तु कहाँजे, तसुधर्म अनंत
लहीजे रे ॥ मन० ॥ सामान्य विशेषनुं
धाम, ते द्रव्यास्तिक परिणाम रे ॥ मन०।५।

अर्थ:-वस्तु अनंत धर्मात्मक छे अर्थात् अनंता
धर्मो वस्तुमां समकाले होय छे. जेम स्वद्रव्यादि
चतुष्टये वस्तु अस्ति स्वभाववन्त छे. पर द्रव्यादि
चतुष्टये वस्तु नास्ति स्वभाववन्त छे. तेमज नित्य
अनित्य, एक, अनेक, भेद, अभेद, भव्य, अभव्य,
वक्तव्य अवक्तव्य, विगेरे स्वभाववन्त वस्तु होय
छे माटे जो तेमांथी स्वाभिष्ट एक स्वभावने एकांते
गवेषीये, निश्चय करीये तो वस्तुनुं ज्ञान यथार्थ थाय
नहीं पण जो स्यात् अस्ति, स्यात् नित्य, स्यात्

एक विगरे अनेकांते गण्येयीये तो या
 राजा धर्मोनी पण सूचना थाय एम
 स्याद्रवाद अनंत धर्मात्मक छे तेथी स्या
 वस्तुमां रहेला अनंत धर्मो बोध थाय.

बली अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अस्
 प्रमेयत्व, सत्व, ए व मूल सामान्य तथा
 स्वभाव, नास्तिस्वभाव नित्यस्वभाव,
 स्वभाव, एतस्वभाव, अनेकस्वभाव, भेदस्
 अभेदस्वभाव भव्यस्वभाव, अभव्यस्वभाव,
 व्यस्वभाव, अवक्तव्यस्वभाव, परमस्वभाव
 उत्तरसामान्य स्वभाव वस्तुमां अनंता छे
 जीनमां चेतनता अनुयायी अनेक विशेष स्व
 छे तेम धर्मास्तिकायमां गति सहायादि,
 अधर्मास्तिकायमां स्थितिसहाय आदि तथा
 कांशमां अवगाहदान आदि तथा पुद्गलमां पू
 गलनादि अनंत धर्मो छे ते अनंत सामान्य स्वभ
 तथा विशेष स्वभावनो आधारभूत जे अस्तित्व
 धर्म ते सर्वे द्रव्यमां सदाय समकाले परिणमे
 उक्तंच. “ नित्यत्वादीनां उत्तर सामान्यानां
 परिणामिकत्वादीनां विशेष स्वभावानामाभावात्

भूत धर्मत्वं अस्तित्वं ” विगेरे ॥ ५ ॥

जिनरूप अनंत गणीजे, ते दिव्यज्ञान जा-
णीजे रे ॥ मन० ॥ श्रुत ज्ञाने नय पथ
लीजे, अनुभव आस्वादन कीजे रे । मन० ॥ ५ ॥

अर्थ:-जिनेश्वर निर्मल ज्ञानानुयायी अनंत
रमणीय गुणना समूह अनंत धर्म विराजमान छे
अप्रतिहत महान तेजस्वी अखंड एक ज्ञान मूर्ति
छे. इंद्रिय विषयधी अतीत छे, ज्ञानस्वरूपी ज्ञान-
गम्य छे, तेथी तेओने रागद्वेष रूप मलीमताथी
रहित मात्र शुद्ध दिव्यज्ञानवडे जाणी शकीये माटे
जिनेश्वर ते अनंत गुणात्मक अर्थात् जिनेश्वरना
अनंत गुणोने शुद्ध नये जाणवुं तेज सुंदर अनुपम-
ज्ञान छे ते माटे अनंत गुणात्मक जिनेश्वरने सम्य-
क्प्रकारे जाणवा माटे भवसमुद्रमां नौका समान
सवेज्ञ बीतराग प्ररूपित श्रुतज्ञानना प्रसादधी
सुनय-स्याद्वाद मार्ग ग्रहण करीए. अने शुद्ध नये
जाणी तत्स्वरूपना अनुभवनो आनंद पामीए-
भोगवीए. उक्तंच-राग वसंततिलका वृत्तम-
“ नैकान्त संगत दशा स्वयमेव वस्तु, तत्त्व

व्यवस्थितिमिति प्रावल्लोक यन्तः ॥ याद-
वाद शुद्धि मधिका माधिगन्य सन्तो, ज्ञानी
भवन्ति जिन कीति मलन्ययन्तः ” भावार्थ-
सर्वे वस्तु सङ्गत अनेकांतात्मक छे माटे जिनेश्वरना
स्याद्वाद न्यायमे नहि उलंघन करतां वस्तु तत्त्वनी
अनेकांतात्मक व्यवस्था मन्नुग्व दृष्टि राखी स्या-
द्वादनि अधिक शुद्धिने अंगीकार करी सत्पुरुषो
ज्ञानी बने छे-ज्ञानपद धारण करे छे. । ५ ॥

प्रभु शक्ति व्याक्ति एक भावे, गुण सर्वरह्या
समभावेरे ॥ मन० ॥ माहरे सत्ता प्रभु
सरखी, जिन वचन पसाये परखीरे ॥
मन० ॥ ७ ॥

अर्थ:-हे त्रिलोकपूज्य प्रभु ! आपनी ज्ञान
दर्शन सुख वीर्यादि सर्व शक्तिउं व्यक्त अर्थात्
निरावरण थई छे, अवाधित पणे पोताना शुद्ध
कार्ये परिणमे छे, आगामी अनंतकाल सुधी
एमज परिणमवाने शक्तिमान छे, कोई पण काले
क्षीणता पामे तेम नथी कारण के द्रव्यमां सामर्थ्य
पर्याय तथा छती पर्याय अनंत छे माटे आपनी

धारी हूँ. जो आपनी आज्ञाने मस्तके चढ़ावी
तदनुसार सम्यक्पराक्रम सजावी सम्यक्दर्शन
ज्ञान चारित्र्यने आदस्-मेयुं तो आप सदृश परमा-
नंद भोगने निःसंदेह प्राप्त पाउं. उक्तंच- “तत्त्वार्थ
श्रद्धानं सम्यग् दर्शनं, यथार्थ हेयोपादेय
परीक्षा युक्त ज्ञानेन सम्यग्ज्ञानं, स्वरूप
रमण पर परित्याग रूपं चारित्रं येतद्रत्नत्रयी
रूप मोक्ष मार्ग साधनात् साध्य सिद्धिः ”
एव मैं आपना न्याय युक्त अवाध्य वचनना प्रसादे
परीक्षा पूर्वक माहरी सत्तानो निर्धार कर्यो छे ॥७॥

तुं तो निज संपत्तिनो भोगी, हुं तो पर
परिणातिनो योगी रे ॥ मन० ॥ तिण तुम
प्रभु माहरा स्वामी, हुं सेवक तुज गुण
ग्रामी रे ॥ मन० ॥ ८ ॥

अर्थ:-हूं अनादिथी कर्म शत्रुनी जेलमां पडेलो
होवाथी अनंत काल सुधी माहरी ज्ञानादि अखूद
लक्ष्मीतुं मने दर्शन पण न मळ्युं तेथी जड चल
जगत् जीवनी एंव, जलना परपोटा जेवी क्षण-
भंगुर, पराधीन, चाहदाहथी बालनार, माहराथी

दूरवर्ती थई अनेक प्रकारना शोक दुःख उपजावतार,
तेना काल प्रमाणे वर्त्तनार, सदा अतृप्त राखनार,
जेनो भोग किंपाकफलनी पेठे प्राण घातक, एवी
जे पुद्गल परिणति (पौद्गलीक विषयो) तेमां
हुं भोग सुख मानी मग्न, तल्लीन थई रह्यो, माहरी
कर्तृत्व, भोक्तृत्व ग्राहकत्व, व्यापकत्व, दान
लाभ, भोग, उपभोग आदि परिणतिने तद्गल
करी संसार परिपाटीने बधारी उक्तंच- “ जो

अपसत्थोरागो, बहुइ संसार भ्रमण परिवाडी ।

विसयाइसु सयणाइसु, इष्टं पुग्गलाइसु ॥ ”

माहरी अनुपम अखूट ज्ञानादिक संपदाथी वियोगी
रह्यो पण हे भगवंत ! आप तो आत्म संपदाना
भोगमां अंतराय करनार कर्मशत्रुनो सम्यक्चारित्र
बडे समूल नाश करी अनंतज्ञान, अनंतदर्शन,
अनंतसुख, अनंतवीर्य अनंतदान, अनंतलाभ,
अनंतभोग अनंतउपभोग आदि स्वसंपदानो लाभ
मेलवी स्वाधीन करी निरंतर निष्कण्टक पणे ज्ञानादि
अनंत अचल निरुपचरित अनुत्तर आत्म संपदानां
भोगमां अत्यंत मग्न थया छो तेथी हे प्रभु ! आप-
नेज माहारा स्वामी जाणुं छुं, आपथीज माहरो
मनोर्थ परिपूर्ण थशे. आपनाज दर्शनथी मारी

अखूट लक्ष्मी माहाराउपर प्रसन्न भई माहारे स्वाधीन
थसो माटे तुं आपनी सेवाने निरंतर चाहनार आपनो
सेवक आपनाज गुण ग्राममां संतोष वृत्ति धारण
करुं छुं ॥ ८ ॥

प. संबंधे चित्त समवाय, मुज सिद्धिनुं
कारण थाय रे ॥ मन० ॥ जिनराजनी सेवना
करवी, ध्येय ध्यान धाणा धरवी रे ॥ मन० ॥ ९ ॥

तुं पूरण ब्रह्म अरुपी, तुं ज्ञानानंद स्वरूपी
रे ॥ मन० ॥ इम तत्वालंबन करिये, तो
देवचंद्र पद वरिये रे ॥ मन० ॥ १० ॥

अर्थ:-आपनी सेवामां जो माहकं चित्त एकाग्र
थाय, अभेद संबंध धारण करे तो तत्काल माहारा
उपादानमां सिद्धिनुं कारण पद उत्पन्न थाय माटे में
तो निश्चय कर्यो छे के हे जिनेश्वर ! अन्य सकल
परद्रव्यनी सेवा तजी आपनीज सेवामां निरंतर
वसवुं, आपने शुद्ध ध्येय जाणी आपनाज ध्यानमां
निश्चल वृत्ति धारण करवी ॥ ९ ॥

कारण के हे जिनेश्वर ! कोइ पण द्रव्यनी
कामना आपमां जणाती नथी तथा पोताना ज्ञानादि

सर्वे पर्यायोना आप कारण तथा ज्ञाता भोक्ता
 होवाथी आप पूरण ब्रह्म छो. रूप रस गंध स्पर्श
 संस्थान आदि पुद्गल द्रव्यना कोइ पण पर्यायनों
 आपने रंच मात्र पण संश्लेष नथी तेथी आप अरूपी
 छो. आप पोताना ज्ञानजन्य आनंदमां सदा लीन
 छो-तद्वरूप छो माटे आपनुं अवलंबन धारण करू
 छुं. कारण के जेम काष्ठना अवलंबने लोढु जलमां
 तरी जाय तेम हुं आपना अवलंबने आ भयंकर
 भवार्णवमांथी तरी देवमां चंद्रमा समान शुद्ध
 सिद्ध परमात्म अवस्थाने प्राप्त थईश. ॥ १० ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ षष्ठम श्री स्वयंप्रभ जिन स्तवनं ॥

मो मनडो हेडाउ हो मिसरि ठाकुरो महदरो

॥ एदेशी ॥

स्वामी स्वयंप्रभने हो जाउं भामणे हरखे

वार हजार ॥ वस्तुधरम पूरण जसु नीपन्यो

भावकृपा किरतार ॥ स्वामी० ॥ १ ॥

अर्थ:— महान् अखूट वैभवधारी इंद्र चंद्र चक्र-
 वर्ती आदिना समूहवडे पण वंदनीक, स्वयं बुद्ध,

स्वयं आत्म लक्ष्मीना स्वामी श्री स्वयं प्रभु स्वामी-
 ने हजारवार-चारंवार, निरंतर, भामणे जाउं अत्यंत
 प्रमोद भावना वडे गुणानुरागी थइ सेवा
 भक्तिमां लीन थाऊं. के जेनो “वस्तु धरम पूरण
 नीपन्यो” अर्थात् अनादी कालथी ज्ञानावर्णादि
 कर्मवडे आवृत थइ रहेला होवाथी ज्ञानादि आत्म
 धर्मो पोतानुं कार्य शुद्ध रीतेकरी शकता नहोता,
 परवश परानुयायी थइ रह्या हता, कर्मबंधनना हेतु
 थइ रह्या हता, ते सर्वे धर्मो संपूर्ण प्रगटव्यक्त थया
 छे, तदन निरावरण थया छे, अप्रतिहत् पणे पोताना
 शुद्ध कार्ये निरंतर परिणामे छे तेथी अखंड अचल
 अविनाशी परमानंद दशाने प्राप्त थया छे परम नि-
 भय निराकुल दशामां अनंत शुद्धात्म अनुभूतिमां
 तल्लीन थइ रह्या छे. तथा “भाव कृपा किरतार”
 अर्थात् चार गतिरूप अपरिमित भयंकर भवाटवीम
 विषय कषाय वशे छेदन भेदन ताडन तर्जन तिर-
 स्कार वियोग शोक भय आक्रंद विगरे अनेक
 प्रकारनां असह्य शारीरिक तथा मानसिक दुःखो
 दीन अनाथपणे भोगवताने, अत्यंत कारुण्य भाव-
 नावडे सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप मोक्ष मार्ग
 दोरी, तओना दुःखनो समूल नाश करी परमानंदमय

शिवपुरीमां विराजमान करो छो. एज श्री स्वयं-
प्रभु स्वामीनी दया परमोत्कृष्टता धरावे छे. पण
जे विषय कषायनी वृद्धि करनार उपदेश, तथा
पदार्थो आपी, अज्ञानी जीवोनी विषय कषाय तथा
हिंसांनी प्रवृत्तिने वधारे छे-तेनां कारणोने पुष्ट
करे छे अने हमे दया करीए छीए एम कहेनार
मिथ्याभिमानी जीवो तो हे प्रभु ! दयालु नहि
पण वास्तविक न्याये आपना वचनानुसार हिंसाना
अनुमोदक प्रतित थाय छे. ॥ १ ॥

द्रव्य धरम ते हो जोग समाखा, विषया-
दिक परिहार ॥ आत्मशक्ति स्वभाव सुधर्म-
नो, साधनहेतु उदार ॥ स्वामी० ॥ २ ॥

अर्थ:-प्राणातिपात; मृषावाद, अदत्तादान,
मैथुन, परिग्रह, क्रोध मान, माया, लोभ, राग,
द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, रंतिअरति,
परपरिवाद, मायामृषावाद तथा मिथ्यात्वशाल्य ए
पापस्थानमां मन वचन कायाने न प्रवर्त्तावित्तां स्याद्-
वाद युक्त जिनेश्वरना पवित्र कल्याणकारी वचनो
वांचवा, सांभलवा, विचारवामां तथा तेना उपदेष्टा
सद्गुरु आदिना विनय बैयावच्चादिमां तथा ज्ञान

दर्शन चारित्र्यनी वृद्धि तथा स्थिति करवामां प्रवर्त्ता-
यवां तथा “ विषयादिक परिहार ” अर्थात्
श्रीणा, सारंगी, दुंदुभी, विगेरे बाजात्र तथा मेना,
पोपट, स्त्री, किनरी आदिना ललिता मनोहर स्वर
ते श्रवणइंद्रिनो विषय, तथा स्त्री पुरुष पशु पक्षी
यालक याग यगीचा तथा मनोहर आवास विगेरेना
चित्र विचित्र मनोज्ञ वर्ण तथा घाट ते नेत्रइंद्रिनो
विषय, तथा पारिजातरु, कुंद, कमल, मालति,
गुलाब, अमर, तगर, चंदन, केशर, मलयागर विगेरे
पदार्थोनी मनोज्ञ सुगंध ते घ्राणेंद्रिनो विषय, तथा
स्वादीम, खादीम, पेय आदि वस्तुना मनोज्ञ मधु-
रादि स्वाद ते जीव्हाइंद्रिनो विषय, तथा स्त्री
पुरुषादिनां मनोहर अंग तथा शय्या आसन विगेरे
पदार्थोना मनोज्ञ स्पर्श ते स्पर्शेंद्रिनो विषय ए
पंचेंद्रिनां विषयोनो त्याग करवो अर्थात् ते विषयो
ने इष्टं रम्यं भोग्य सुहंकर जाणी तेओमां राग,
कामना, मूर्च्छा करवी नहि, प्राप्त स्वाधीन तथा
भोगववानुं सामर्थ्य होवा छतां पण ते विषयादिने
स्वभावाचरणथी चुकवाना हेतु तथा दुःखना निदान
जाणी तेओनो परिहार करवो ते साचो त्याग वे.
पण नहि मलवाधी न भोगववुं ते कंई त्याग नथी,

ઉક્તંચ-(દશ વૈકાલિકે) “--જે ચ કંતે પિષ્
 મોષ, લઘ્વે વિપિટી કુવ્વડ ॥ સાહીળે ચયડ
 મોષ, સે હુ ચાહતિ વુચ્ચડ ” -એમ ત્રિજોગનું
 સંમારવું તથા વિષયાદિનો ત્યાગ તે આત્માના
 મલિન થયેલા જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર આદિ સ્વભાવિક
 ધર્મને શુદ્ધ પ્રગટ કરવામાં કલ્યાણકારી સાધનો
 હોવાથી દ્રવ્યધર્મ છે અર્થાત્ ભાવ ધર્મના કારણો છે
 ઉક્તંચ-“ કારણ યાસે દઢવં ” અને કારણ વગર
 કાર્ય સિદ્ધિ અલભ્ય છે, ઉક્તંચ-કારણ જોગે હો
 કારજ નીપજેરે, યહમાં કોઈ ન વાદ । પણ
 કારણ વિણ કારજ સાધિયેરે, તે નિજ ભતિ
 ઉન્નાદ-માટે વિષય પરિગ્રહાદિ જે રાગાદિ
 અશુદ્ધોપયોગના હેતુઓ છે તેનો ત્યાગ કરવો અને
 જ્ઞાન ધ્યાનાદિક, જે રાગાદિનો નાશ કરી શુદ્ધાત્મ
 ભાવ પ્રગટ કરવાના હેતુઓ છે તે આદરવા, જેથી
 કાર્ય સિદ્ધિ થાય. ॥ ૨ ॥

ઉપશમ ભાવે હો મિશ્ર ક્ષાયિકણે, જે
 નિજ ગુણ પ્રાગ્ભાવ ॥ પૂર્ણાવસ્થાને નીપજાવતો,

સાધન ધર્મ સ્વભાવ ॥ સ્વામી૦ ॥ ૩ ॥

અર્થે:-એમ ત્રિજોગનું સમારવું તથા વિષયાદિ-
કનો ત્યાગ, એ જ્ઞાનાદિ ધર્મો પ્રગટ કરવાનો
સાધનો છે તે ઉપશમ ક્ષયોપશમ તથા ક્ષાયિકભાવે
પ્રગટ થયેલા આત્મ ગુણોને પૂર્ણ શુદ્ધ અવસ્થાને
અર્થાત્ સિદ્ધદશાને પ્રાપ્ત કરે છે. જે કંઈ આત્મ ધર્મ
ઉપશમપણે ક્ષયઉપશમપણે વા ક્ષાયિકપણે પ્રગટ
પ્રાપ્ત થયો તે ક્રમે ક્રમે આત્મ ગુણોની શુદ્ધિ કરતો
સંપૂર્ણ શુદ્ધાવસ્થાને-સિદ્ધ અવસ્થાને પ્રાપ્ત કરવાને
કારણ રૂપ છે. જેમ સમક્તિ પ્રાપ્ત થયાથી વિરતિની
પ્રાપ્તિ થાય, અને વિરતિવડે અપ્રમત્ત ભાવનો પ્રાપ્તિ
થાય, તથા અપ્રમત્ત ગુણ વડે સંપૂર્ણ કપાયોનો નાશ
થાય, કપાયોના નાશવડે વીતરાગતા પ્રાપ્ત થાય
છે. અને વીતરાગતા વડે કેવલજ્ઞાન થાય. એમ ક્રમે
ક્રમે આત્મ ગુણોની અધિક અધિક શુદ્ધિ થઈ સંપૂર્ણ
શુદ્ધિ થાય. તેથી જે ગુણ પ્રાપ્ત થયો તે અધિક
ગુણની પ્રાપ્તિનો હેતુ છે. જેમ કોઈ માણસ મહાન્
વ્યાધિગ્રસ્ત હોવાથી જરા પણ खोराक લઈ પચાવી
શકવાને અસમર્થ હોય, અત્યંત નિર્બલ હોય પણ તે
કોઈ રીતે થોડું વલ પામે તો તે બલવડે ધીમે ધીમે
અધિક અધિક खोराक પચાવી અધિક અધિક

लवान् यतो पूर्णं बलवान् धाय. उक्तञ्च-“ प्रश-
 नरति ग्रंथे-आर्या छंदः ॥ पूर्वं करोत्यनंतानु-
 वन्धि नाम्नां क्षयं कषायाणाम् । मिथ्यात्व
 मोहं गहणं, क्षपयति सम्यक्त्व मिथ्यात्वम्
 सम्यक्त्व मोहनीयं, क्षपयत्यष्टावतः कषायांश्च ।
 क्षपयति ततो नपुंसक, वेदं स्त्रीवेदमथतस्मात्
 हास्यादि ततःषट्कं, क्षपयति तस्माच्च पुरुष-
 वेदमपि ॥ संज्वलनानपि हत्वा, प्राप्नोत्यथ
 वीतरागत्वम् । सर्वोद्घातित मोहो, निहत
 क्लेशो यथाहि सर्वज्ञः ॥ भात्यनुप लक्ष्य
 राहंशोन्मुक्तः पूर्णं चन्द्रइव ॥ ” तैथी समकित
 प्राप्तिमाटे अत्यंत उद्यम करो प्रथम समकितनो
 प्राप्ति करवी जैथी बीजा सर्वे गुणो प्रगट धाय. ।३।

समकित गुणथी हो शैलेशी लगे, आत्म
 अनुगत भाव ॥ संवर निर्जरा हो उपादान
 हेतुता, साध्यालंबन दाब ॥ स्वामी० ॥ ४ ॥

अर्थः-अनादि विभाव योगे आत्म परिणति

પરાનુગત થઈ શકે અર્થાત્ જ્ઞાનશક્તિ પરદ્રવ્યને
જાણવામાં, દર્શનશક્તિ પરદ્રવ્યને દેખવામાં-નિર્ધાર
કરવામાં, ચારિત્રશક્તિ પરદ્રવ્યમાં આચરણ રમણ
કરવામાં, એમ સર્વે ગુણા આત્મગુણના ધાવકાણે
પરાનુયાયી પ્રવર્તે છે પણ જ્યારે સમક્ષિતનો લાભ
પામે ત્યારે પરાનુગત થઈ શકે આત્મ પરિણતિને
શુદ્ધાત્મ અનુગત પથે પ્રવર્ત્તાવવાનો અભિલાષી
ધાય, શુદ્ધ કાર્ય સન્મુખ પરિણતિ કરે અર્થાત્
“ સમક્ષિત ગુણથી ” એટલે ચોથા ગુણસ્થાનથી
માંડી “ શૈલેશી ગુણ લગે ” એટલે ચૌદમા ગુણસ્થાન
સુધા પરાનુગત થઈ શકે આત્મ પરિણતિને વારી
ક્રમે ક્રમે અધિક અધિક શુદ્ધતાવ વર્ત્તાવતો જાય.
જેમ જે પરિણતિ અનાત્મ ધમ્મુને આત્મ જાણવા-
સહજવા વિગેરેમાં પ્રવર્ત્તી હતી તે ચોથે ગુણસ્થાને
આત્માને આત્મા જાણવા-સહજવા વિગેરેમાં પ્રવર્ત્તાવે
તથા જે પરિણતિ હિંસાદિ પાંચ અવ્રતમાં વર્ત્તતી
હતી તે પાંચમે છઠે ગુણસ્થાને અહિંસાદિ પાંચ
વ્રતમાં વર્ત્તાવે તથા મદ વિષય ક્રધાય નિદ્રા વિક-
ર્યામાં જે પરિણતિ વર્ત્તતી હતી તે વારી સાતમે
ગુણસ્થાને અપ્રમત્ત ભાવે આત્મગુણ રમણમાં વર્ત્તાવે
એમ આઠમે ગુણસ્થાને રસઘાત સ્થિતિવાત ગુણ-

संक्रम गुणश्रेणि करे, अपूर्व स्थिरतामां आत्म
परिणतिने प्रवर्त्तावे, संज्वलन क्रोध मान माया
विगरेथी आत्म परिणतिने वारी नवमे गुणस्थाने
ते कषाय रहित-अकषायपणे-समभावमां वर्त्तावे
सूक्ष्म लोभ शिवाय बाकीना कषायधी आत्म
परिणतिने वारी दशमे गुणस्थाने अधिक शुद्ध
समपरिणामे प्रवर्त्तावे, सर्व कषायनो क्षय करी
बारमे गुणस्थाने वीनगाग यथारूपात् चारित्र्यां
वर्त्ते, चार घातीया कर्मनो समूल क्षय करी शिर्या
गणस्थाने अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र्य,
अनंत वीर्यपणे आत्म परिणतिने वर्त्तावे-योग
क्रियानी सकल चपलता वारी चौदमा गुणस्थाने
अयोनी अवस्था करी पूर्ण परम निवृत्ति पद पामे.
एम दरेक गुणस्थाने आत्म गुणनी अधिक अधिक
शुद्धि करतो संपूर्ण सिद्धावस्थाने प्राप्त थाय. एम
दाक्ष राखी साध्यने आधारे साध्य सन्मुख उपा-
दान-आत्म परिणतिनी शुद्धताना हेतुण वर्त्तवुं तेज
संवर अर्थात् सवाकर्मनुं रोकवुं तथा निर्जरा एटले
पूर्व संचित कर्म क्षय थवानो हेतु छे, उक्तं च-
“जो संवरेण जुत्तो, अप्पठ प्रसाधगोहि
अप्प णं । मुनिउण आदि णियदं, णाणं

સો સંધુળોદિ કમ્મરયં ” ॥ ૪ ॥

સકલ પ્રદેશે હા કર્મ અભાવતા, પૂર્ણાનંદ
સ્વરૂપ ॥ આત્મ ગુણની હો જે સંપૂર્ણતા,
સિદ્ધ સ્વભાવ અનૂપ ॥ સ્વામી ॥ ૫ ॥

અર્થ:-આપના આત્મ અંગના સર્વે પ્રદેશથી
જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મ મલનો સર્વથા અભાવ થયો છે
તેથી સર્વે પ્રદેશ સ્ફટિકમણિ સમાન શુદ્ધ સંપૂર્ણ
નિરાવરણ થયા છે, કોઈપણ કાલે હવે કર્મ મલનો
રંચ માત્ર પણ સરલેપ થવાનો સંભવ નથી, તેથી
આત્મ અંગમાં વસતા અનંત ગુણ પર્યાયના સર્વે
અવિભાગો સંપૂર્ણ શુદ્ધ થયા છે, શુદ્ધ કાર્યે પરિણમે
છે તેથી હે ભગવંત ! આપ પૂર્ણાનંદ સ્વરૂપ છો.
અર્થાત્ જગત્જીવ તો ઉપાધિના પ્રતિકારથી આનંદ
માને છે, પરદ્રવ્યને ભોગ જાણી તેમાં લયલીન થઈ
રહે છે તેથી જગત્જીવનો આનંદ તો ક્ષણભંગુર
અપૂર્ણ તથા ભયસહિત છે, પણ આપ તો પોતાના
સ્વાધીન અવિનશ્વર એક હોઆવગાહી ગુણ પર્યાયોના
ભોક્તા છો, તેમાં રમણ કરો છો, તેમાં સંતુષ્ટ
તલીન થઈ આનંદ ભોગવો છો તેથી આપનો આનંદ
કોઈપણ કાલે નાશ થાય અથવા દૂર જાય તેમ

नथी तथा स्वाधीन अने सहज होवाथी भय
आकुलता स्पृहा रहित ते तेथी आपनोज आनंद
एकांतिक आत्यंतिक पूर्णपदने योग्य छे. जगत्-
जीवनो आनंद तो साचो आनंद नथी, अज्ञान वशे
आनंद मनाय छे. एम आत्मगुणनी संपूर्ण शुद्धता,
कर्तृता, भोक्तृता, परिणामीकता, ग्राहकता, व्या-
पकता आदि तेज आपनो अनुपम सिद्ध स्वभाव
छे. हवे कईपण कार्य करवानुं शेष नथी, कईपण
आदरवानुं तेम छोडवानुं बाकी नथी तेथी अचल
अबाधित शाश्वत परमानंदना स्वामी छो. ॥ ५ ॥

अचल अबाधित होजे निःसंगता, परमात्म
चिद्रूप ॥ आत्मभोगी हो रमता निजपदे,
सिद्ध रमण ए रूप ॥ स्वामी० ॥ ६ ॥

अर्थ:-आत्म परिणामने चल करनार जे राग
द्वेष मोह परिणाम तेनो सर्वथा अभाव होवाथी
अचल, तथा आत्म परिणामने शुद्धपणे परिणम-
वामां घात, स्खलना करनार ज्ञानावरणादिक
घातीकर्मनो अभाव होवाथी अबाधित छो। तथा
धन धान्य क्षेत्र वस्तु हिरण्य आदि बाह्य परिग्रह
तथा मिथ्यात्व क्रोध मान माया लोभ हास्य रति

अरति भग्न शोक जुगुप्सा पुन्यघेद स्त्रीवेद नपुंसक-
वेद चोद अभ्यंतर परिग्रह, एम पात्र अभ्यंतर
परिग्रहथी सर्वथा रहित होवाथी निःसंगछो, तथा
ज्ञानानुयायी सर्वे धर्मो संपूर्ण शुद्ध निमेल होवाथी
परमात्मा छो, तथा संसार अवस्थामां कर्म संयोगे
शरीरमां लोली भूतपणे वसी शरीर रूपे पुद्गल
रूपे संसारी जीव पोताने माने छे पण आप तो
शरीरथी सर्वथा अतित थयाछो तथी मात्र ज्ञान-
रूप-ज्ञानमूर्त्ति छो तथा पुद्गल भोगनुं रमण तजी
आप पोताना शुद्ध ज्ञान दर्शनादि गुणोमां रमण
करवावाला आत्म भोगी छो, शुद्ध स्वाधीन अवि-
नश्वर रम्यमां रमण करो छो तथी आपनुं रमण
संपूर्ण अने अधिनश्वर होवाथी सिद्धपद धारण
करे छे ॥ ६ ॥

एहवो धर्म हो प्रभुने नीपन्यो, भाख्यो
एहवो धर्म ॥ जे आदरतां हो भवियण
शुचि हुवे, त्रिविध विदारी कर्म ॥
स्वामी० ॥ ७ ॥

अर्थ:-एम प्रभु ! आपना ज्ञानादि सर्वे
धर्मो कर्म मलथी रहित शुद्ध प्रगट थया. अबल,

અવિનાશી, અનંત, અજ, અલેશી, અવેદી, અકષાયો
અચલ, અક્રિય, નિત્ય, સ્વાધીન, નિર્દ્વેષ, પરમાનંદ
દશાને પ્રાપ્ત થયા હો. અને જે રીતે આપ એ દશાને
પ્રાપ્ત થયા તેજ ઉપાય, તેજ ધર્મ, પરમ કરુણા વહે
ભવ્ય જીવોને આ સંસાર સમુદ્ર-માંથી પારંગત થઈ
શિવભૂમીએ પહોંચવા પ્રરૂપ્યો-ઉપદેશ્યો છે. તે
સમ્યક્દર્શન જ્ઞાનચારિત્ર રૂપ ધૈર્ય આદરતાં-સેવતાં
ભવ્ય જીવો દ્રવ્યકર્મ, ભાવકર્મ અને નોકમ એ
ત્રણ પ્રકારના કર્મનો નાશ કરી પરમ પવિત્ર શુદ્ધ
નિરાવરણ થાય. ॥ ૭ ॥

નામ ધરમ હો ઠવણ ધરમ તથા, દ્રવ્ય
ક્ષેત્રતિમ કાલ ॥ ભાવધર્મના હો હેતુ પળે
મલા, ભાવ વિના સહુ આલ ॥ સ્વામી૦ ॥૮॥

અર્થ:-નામધર્મ, સ્થાપનાધર્મ, દ્રવ્યધર્મ, ક્ષેત્રધર્મ,
કાલધર્મ, તથા ભાવધર્મ એમ ધર્મ સ્વરૂપ અનેક
પ્રકારે છે, પણ નામ, સ્થાપના, દ્રવ્ય ક્ષેત્ર તથા કાલ
એ જો ભાવધર્મના સન્મુખ, ભાવધર્મના હેતુ હોય
અર્થાત્ ભાવધર્મ સાધવામાં કારણભૂત હોય તો
પ્રશંસનીય કાર્યકારી છે પણ જો તે ભાવધર્મની
અપેક્ષા શૂન્ય હોય તો આલ અર્થાત્ નિર્રથક ધુલ

॥ अथ सप्तम श्रीं रुषभानन जिन

स्तवनम् ॥ वारी हुं

गोडी पासने ॥ ए देशी ॥

॥ श्री रुषभानन वंदिये, अचल अनंत गुण
वास जिनवर । क्षायिक चारित्र भोगथी,
ज्ञानानंद विलास जिनवर ॥ श्री० ॥ १ ॥

अर्थ:-धर्म धुरंधर, धर्म तीर्थंकर, अशरण
शरण, श्री रुषभानन प्रभुने आ लोक परलोकना
विषय सुखनी अभिलाषा स्पृहा रहित तथा मान
पूजाना लोभ रहित, आ संसार समुद्रमांथी तारण
तरण जहाज जाणी, अत्यंत विशुद्ध भावनाए परम
आदर पूर्वक वंदिये-सेवा भक्ति करिये. के जे
प्रभु अचल अर्थात् प्रदेश मात्र पण दूर न थाय
तथा राग द्वेष मोह जन्य चपलता रहित एहका
ज्ञानादि अनंत गुणना वास-निधान छे तथा क्रोध
मान पाया लोभ हास्य रति अरति भय शोक
जुगुप्सा तथा त्रण वेद ए चारित्रमोहनीय प्रकृतिनो
सत्ता सहित क्षय करी यथाख्यात् स्वभावाचरण
ज्ञान दर्शन आदि अनंत स्वभाविक भोग जन्य
आनंदमां अनंत ज्ञान सहित विलसे छे ॥ १ ॥

જે પ્રસન્ન પ્રભુ મુખ ગ્રહે, તેહિન નયન
પ્રધાન જિનવર ॥ જિન ચરણે જે નામીયે;
મસ્તક તેહ પ્રમાણ જિનવર ॥ શ્રી૦ ॥૨॥

અર્થ:-હે ભગવંત ! આપના જ્ઞાન દર્શનાદિ સર્વે
ભોગ ઉપભોગો આપને સદા સ્વાર્ધાન વર્તે છે. કોઈ
પણ કાલે પ્રદેશ માત્ર પણ દૂરવર્તી થાય તેમ નથી
તેથી આપ સદા શોક રહિત તથા તે ભોગ ઉપભોગ
ને કોઈ પણ યાદા પીડા તથા હરણ કરી શકે તેમ
નથી તેથી પરમ નિર્ભય, તથા તે ભોગ ઉપભોગો
પર દ્રવ્યના મેલ-મલિનતા રહિત સદા શુદ્ધ હોવાથી
આપ ગિલાની રહિત, તથા તે ભોગ ઉપભોગો
અલૂટ આનંદ જનક હોવાથી અરતિ રહિત છો,
એમ ક્રોધાદિ સર્વે કષાય રહિત હોવાથી આપનું
મુખકમલ સદા અમ્લાન પરમ પ્રફુલ્લિત પ્રસન્ન છે,
દર્શનીય છે. એવા આપ શ્રીના આનંદ વર્ધક
વદનકમલનું, જે નેત્ર વડે દર્શન થાય તેજ નેત્ર
પ્રધાન કલ્યાણકારી માનું હું. તથા મોક્ષ માર્ગમાં
અતિ શીઘ્રતાએ ગમન કરનાર આપના ચરણ દ્વયને,
જે મસ્તક વડે સ્પર્શ થાય તેજ મસ્તક પામ્યું પ્રમાણ
મળુ હું ॥ ૨ ॥

॥ अरिहा पदकज अरचाये, सलहीजे
 ते हथ्य जिनवर ॥ प्रभु गुण चिंतनमें रमे,
 तेहज मन सुकयथ्य जिनवर ॥ श्री० ॥३॥

अर्थ:-अनादि कालधी आत्म साम्राज्यने
 कवजे करि राखनार मोहादि दुष्ट शत्रुउने जेमणे
 अति तिक्खण ज्ञान बाण चडे गतःप्राण निवर्ण
 करया छे एहवा हे श्री अरिहंत रूपभानन भगवंत!

सुवासमां मोहीत करी ते स्थले बेरी राखी तेना
 वल्लभ प्राणनां त्याग करावे हे तेम जो माहुरूं
 मन, इंद्रियो तथा अंगोपांग विषय कपायना पदार्थो
 उपार्जन करवामां, मेलववामां, तेनुं सेवन, तेनी
 रक्षा करवामां रोकाय, स्वपर जीवना द्रव्य भाव
 प्राणनी हिंसा करवामां वर्त्ती-मददकारी थाय, पाप
 कमनुं उपार्जन करी भव भ्रमणना हेतु थाय, तो
 एहवा मन तथा इंद्रियोना लाभर्था शुं ? तथा दश
 दृष्टाने दुर्लभ एहवा मनुष्य भवना लाभ पण
 निष्कल-यद्गुक्तं- “ यः प्राप्य दुःप्राप्यमिदं
 नरत्वं, धर्मं न यत्नं न करोति मूढः ॥ वल्लेशः
 प्रबंधेन स लब्ध मब्धौ, चिंतामणिं पातयति
 प्रसादात् ” ॥ तथा “ ते धत्तर तरुं वपंति
 भवने प्रोन्मूल्य कल्पद्रुमम् । चिंताग्नौ मपास्य
 काचशकलं स्वीकूर्वते ते जडाः ॥ विक्रीय
 द्विरदं गिरीं द्र सट्टशं क्रीणंति ते रासभं । य
 लब्धुं परिहृत्य धर्ममधमा धावंति भोगा-
 शया ” ॥ ३ ॥

जाणो छो सहु जीवनी, साधक बाधक

भांत जिनवर ॥ पण श्रीमुखथी सांभली,
सन पासे नीरांत जिनवर ॥ श्री० ॥ ४ ॥

अर्थ:-हे त्रिलोक पूज्य ! दर्पण तलनी माफक
आपनी केवल-ज्ञान मय उत्कृष्ट ज्योतिर्मां सर्वे
द्रव्यो पोताना त्रैकालिक संपूर्ण पर्यायो सहित
प्रयास विना यथावत् प्रतिबिंबित थाय हे. तेथी
सर्वे जीवोनी साधक बाधक भांति आप जाणो व्ही
अर्थात् अमुक जीव आ समये सम्यक् ज्ञान दर्शन
चारित्र रूप मोक्ष साधनमां वर्त्ते हे के रत्न त्रयना
प्रत्यनीक पणे भव भ्रमणना हेतु कर्म बंधनमां वर्त्ते
हे ए सर्वे वृत्तांत हे करुणा निधि ! आप तो प्रत्यक्ष
पणे जाणोछोज. पण जो आपना मुखारविंदथी
हुं साधक भावमां वर्त्तुं छुं एम सांभलुं तो माहुरुं
मन निरांत पासे, भव भ्रमणना भयनी क्लेश शमे
दूर थाय. ४ ॥

तीन काल जाणंग भणी, शुं कहिये
वारंवार ॥ जि० ॥ पूर्णानंदी प्रभुतणुं,
ध्यान ते परम आधार ॥ जि० ॥ श्री ॥ ५ ।

अर्थ:-त्रणे कालनी परिणतिने हस्तामलकवत्

प्रत्यक्ष पणो समकाले जाणवा देखवावाला प्रभु ।
 प्रत्ये चारंवार शुं कहुं ! मने तो हे प्रभु ! स्वयंभू-
 रमण समुद्रनीं पेठे अखूट आनंद रसथी भरपूर
 आपनाज पदनुं ध्यान-आपना पदमां एकाग्रचित्त-
 तल्लीनता तेज भव समुद्रथी तरवामां उत्कृष्ट
 आधार भूत छे. ॥ ५ ॥

कारणथी कारज हुवे, ए श्री जिनमुख
 वाण ॥ जि० ॥ पुष्ट हेतु मुज सिद्धिना, जाणी
 कीध प्रमाण ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थ:-जगत् दिवाकर, संपूर्ण तत्त्व वेत्ता, श्री
 केवली भगवंत एम प्ररूपे छे के योग्य कारणना
 योग वडे कार्य सिद्धि थइ शके. अर्थात् कार्यना
 स्वरूपनो यथार्थ जाणनार कार्यनो अभिलाषी कर्त्ता,
 उपादान अने निमित्त कारण वडे कार्य सिद्धि पामी
 शके. उपादान-जे पदार्थ कार्य सन्मुख थाय तथा
 तेज संपूर्ण कार्य रुप थाय-कार्य सिद्धिए जेनी
 हयाति जणाय ते उपादान कारण जाणवुं. जेम
 घटनुं उपादान कारण माटी तथा पटनुं उपादान
 कारण रु अथवा सूतर, कारण के माटीनो पिंड
 थाय, पिंडथी स्थास कुसलादि पर्यायो थइ माटीज

સંપૂર્ણ ઘટ રૂપ થાય, સંપૂર્ણ ઘટ થયે પણ માટીની હયાતી છે માટે માટી ઘટનું ઉપાદાન કારણ સમજવું. માટીથીજ ઘટ ઉત્પન્ન થઈ શકે પણ અન્ય વસ્તુમાથી ઘટ થઈ શકે નહિ. ઉક્તંચ- “ યદાત્મકં કાર્યં દ્રશ્યતે તદિદ્ તદ દ્રવ્ય કરણં ઉપાદાન કારણં યથા તંતવઃ પટસ્ય ઇતિ ”

નિમિત્ત-જે ઉપાદાન કારણથી ભિન્ન હોય છે પણ તે વિના કાર્ય સિદ્ધ થઈ શકતું નથી. કાર્ય સિદ્ધ કરવામાં જેની યાસ જરૂર છે તે નિમિત્ત કારણ છે. તે નિમિત્ત કારણ પદ, કર્તાને આધિન વર્તે છે. જેમ ઘટનું ઉપાદાન કારણ માટી છે અને માટીથી દંડ ચક્ર ચીવર. આદિ ભિન્ન છે તો પણ કુંભારને ઘટ સિદ્ધ કરવામાં દંડ ચક્રાદિની અવશ્ય જરૂર છે, તે વિના ઘટ બનાવી શકે નહિ, તથા દંડ ચક્રાદિ ઘટનાં નિમિત્ત કારણ જાણવાં પણ દંડ ચક્રાદિને કુંભાર જ્યારે માટીને ઘટ રૂપ કરવામાં પ્રવર્ત્તાવે (ઉપયોગમાં લે) સ્થાગેજ તેડું (દંડ ચક્રાદિ) નિમિત્ત કારણ કહેવાય પણ કુંભાર ઘટ કાર્ય કરવામાં દંડ ચક્રાદિને વાપરતો ન હોય તો તે કારણ કહેવાય નહિ. કાર્ય કરવા માંડતા પહેલાં

તથા કાર્ય સિદ્ધ થઈ ગયા પછી તે દંડાદિમાં કારણ પદ નથી. કારણ કે કાર્ય કારણ એક સમયે છે પણ જે કાર્યાનંતર તથા પ્રથમ અપ્રયુક્ત કાલે દંડાદિકને નિમિત્ત કારણ કહે છે તે માત્ર નૈગમ નયનો મત જાણવો. એમ કાર્યના સ્વરૂપનો જાણનાર કાર્યનો અભિલાષી કર્તા સાચા ઉપાદાન તથા નિમિત્તના યોગે કાર્ય સિદ્ધિ પામે પણ કારણ વગર કાર્ય સિદ્ધિનો આકાશ પુષ્પવત્ અભાવ જાણવો. તેથી હે પ્રભુ ! જ્ઞાન પૂર્વક નિર્ધાર કરતાં માહરા પરમાત્મ સિદ્ધિના પુષ્ટ હેતુ આપને જાણી આપનું જ શરણ અંગીકાર કરું છું. નિમિત્ત કારણના બે ભેદ છે (૧) પુષ્ટનિમિત્ત (૨) અપુષ્ટ નિમિત્ત. “કાર્યસ્ય આસન્ન નિમિત્તં ઇતિ તદેવ પુષ્ટં ” “ દૂર તરં કારણ નૈમિત્તિકં તત્ અપુષ્ટં ” અર્થાન્ સાધ્ય ધર્મ જેમાં પ્રગટ-વિચ્છિન્ન હોય તથા જેમાં કદાપિ કાર્યનો ધ્વંસક ભાવ ન હોય તે પુષ્ટ નિમિત્ત જાણવું. જેમ તીર્થંકર ભગવંતમાં પરમાત્મ પદ પ્રગટ-વિચ્છિન્ન છે તથા પરમાત્મ પદના ઘાતક ભાવનો જેમાં સર્વથા અભાવ છે માટે તીર્થંકર ભગવંત પરમાત્મ પદ સાધવામાં પુષ્ટ નિમિત્ત છે એમ જાણવું.

(पुष्ट हेतु जिनेन्द्रोयं मोक्ष सद्भाव साधने)

अपुष्ट निमित्त—जेमां साध्य पद विद्यमान न होय, जे कर्त्तानी प्रेरणाथी कारण थाय छे, वली नेमां ध्वंसक भाव पण रहेलो होय ते अपुष्ट निमित्त छे. जेम दंड ते घटनुं अपुष्ट निमित्त छे कारण के दंडमां घट पणुं विद्यमान नथी वली कुंभार ज्यारे घट करवामां प्रवर्त्तावे तोज घटोत्पत्तिनुं निमित्त कहेवाय पण जो कुंभार घट ध्वंस करवामां वापरे तो ते घट ध्वंसना निमित्त कहेवाय माटे दंड ते घटनुं अपुष्ट कारण जाणवुं. माटे हे रूपभानन भगवंत ! आप मारा परमात्मपदना पुष्ट निमित्त छो माटे आपनीज सेवाथी मारी सिद्धि थरो एम जाणी आपनीज सेवा अंगीकार करुं छुं. ॥ ६ ॥

शुद्ध तत्त्व निज संपदा, ज्यां लगे पूर्ण न थाय ॥ जि० ॥ त्यां लगे जगगुरु देवना, सेवुं चरण सदाय ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ७ ॥

अर्थः—अज्ञानरूप अंधकारनो अन्धंन नाश करनार तथा सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र आदि संपूर्ण आत्म गुणनी सिद्धिने प्राप्त होवार्था जगत-

गुरु तथा जगतदेश हे रूपमानन स्वामी ! ज्ञांसुधी
शुद्धात्म तत्त्वज्ञ स्वभाविक अनेक अमृत यन्त्र
संपदानां जने संपूर्णपणे । सिद्धि प्राप्ति न थाय त्यां
सुधी हे दानदयाल ! आपना द्रव्य बाध रूप
चरण युग्मनं निरंतर सेवन करूं एम भावना भावूं
॥ ७ ॥

कारज पूर्ण कर्मा विना, कारण केम सूकाय
॥ जि० ॥ कारज रुचि कारण तणा, सेवेशुद्ध
उपाय ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ८ ॥

अर्थ:-जेम समुद्र पार पामवानो इच्छक पुरुष
जो समुद्र वचे वहाणनो त्याग कर तो समुद्र पार
जड शके नहि अने वचे दूषी जाय. माटे हे भगवंत !
परमात्म सिद्धिरूप माहकं काये ज्ञां सुधि सिद्ध
थयूं नथी त्यांसुधि पुष्टालंवन रूप आपना चरण
युग्मनी सेवना केम व्हांवूं ? कारण के कार्य सिद्धि-
नो रुचिवंत पुरुष कार्य सिद्ध थता सुधी शुद्ध कार-
णोने यथार्थे पणे सेवे-आदरे ए नाति छे. ॥ ८ ॥

ज्ञान चरण संपूर्णता, अव्याबाध अमाय ॥
जि० ॥ देवचंद्र पद पामीये, श्री जिनराज

पासय ॥ जि० ॥ श्री० ॥ ९ ॥

अर्थ:-स्तवन कर्त्ता श्री देवचंद्र मुनि कहे छे के तरण तारण सामान्य केवलीओमां राजा समान श्री रूपमानन तीर्थकरना चरण पसाय सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्रनी संपूर्णता तथा पूर्ण अन्याबाध पणुं तथा अमायी, अलेशी, अरुंदा, अलोभीपणा आदि सर्वे आत्म गुणनी संपूर्णता रूप देवमां चंद्रमां समान परमात्म पदनी सिद्धि पामीये, कृत कृत्य थइये, अनंत काल सुधि सहज अखंड परमानंद विलासने पामीए. ॥ ६ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अष्टम श्री अनंतवीर्य जिन स्तवनम् ॥

चरणाली चामुंडा रण चडे ॥ ए देशी ॥

॥ अनंत वीरज जिनराजनो, शुचि वीरज परम अनंतरे ॥ निज आत्म भावे परिणाम्यो, गुण वृत्ति वर्तनावंतरे ॥ मन मोहह्यं अम्हारुं प्रभु गुणे ॥ १ ॥

अर्थ:-सामान्य केवलीउंमां राजा समान श्री अनंतवीर्य भगवंत ! आपनुं “वीर्य” ज्ञानदर्शनादि

સર્વે ગુણોને વર્તીવામાં આધારભૂત આત્મવીર્ય તે “શુચિ” પર પરિણામિકનાથી સર્વથા રહિત અત્યંત નિર્મલ તથા “પરમ” જગત્વાસી કોઈપણ જીવોમાં એવું આત્મવીર્ય નથી તેથી સર્વોત્કૃષ્ટ તથા “અનંત” જ્ઞાનાદિ અનંત ગુણોમાંથી કોઈપણ ગુણને વર્તીવામાં જરાપણ સ્વલના (વ્યાગ્રાત) ન પામે તથા કોઈપણ કાલે દ્વાંષ ક્ષીણ ન થાય તેથી અનંત છે.

એવું શ્રી અનંતવીર્ય ભગવંતનું પરમ પવિત્ર પરમાત્કૃષ્ટ અનંત આત્મવીર્યે તે ફક્ત જ્ઞાન દર્શનાદિ પોતાનાજ અનંત ગુણને પરિણમવામાં નિઃપ્રયાસપણે સદાયરૂપ સદા પરિણમે છે. એમ શ્રી જિનેશ્વરના પરભાવરૂપ મલિનતાથી સર્વથા રહિત પરમ પવિત્ર જ્ઞાનાદિ અનંત ગુણ જોડીતેમાં માહરું મન મોહ્યું-રત થયું-લીન થયું-ગુણાનુરાગી થયું. ॥ ૧ ॥

॥ યથાપિ જીવ સદા, વીર્ય ગુણ સત્તા-
વંતરે ॥ પણ કર્મે આવૃત્ત ચલ તથા, બાહ્ય
બાધક ભાવ લહંતરે ॥ મનઃ ॥ ૨ ॥

અર્થ:-વીર્ય એ જીવનો મૂલ ગુણ છે તેથી સર્વ જીવો ત્રણે કાલે વીર્ય ગુણની સત્તા સહિત છે એટલે કોઈપણ જીવ કોઈપણ કાલે વીર્ય વગરનો

नथी; तथापि संसारी जीवोत्तुं वीर्य अनादिथी कर्म
 पटल बडे आवृत्त होवाथी आत्मगुणो संपूर्ण शुद्ध
 केवलज्ञान, केवलदर्शन, यथाख्यात् चारित्रादि रूप
 परिणमि शकता नथी अने तेथी पोतानी अनंत
 अव्याबाध आत्मीय सहज समाधिथी वियोगी रहे
 छे. तथा “चल” अर्थात् ज्ञानादि आत्म परिणतिमां
 निश्चल-स्थिर नहि रहेतां राग द्वेष वशे अनेक
 पुद्गल-पर परिणतिमां चलायमान थइ रह्युं छे,
 पर कार्यमां रोक इ रह्युं छे, जेम कोइ पुरुष पर-
 कार्यमां पोतानी शक्ति रोके तो ते स्वकार्य साधी
 शके नहि तेमज ते वीर्य “बाल” हिताहितना
 ज्ञानथी रहित होवाथी “बाधक” अर्थात् पोताने
 अहितकारी पणे परिणमे छे कारण के बाल बाधक
 वीर्य बडे जगत् जीवो अज्ञान मिथ्यात कषाय रूप
 परिणमी अनेक प्रकारना कर्मो बांधि पोताने अत्यंत
 अहितकारी-दुःख समूह रूपा भवोपाधि व्होरी ले
 छे. पण जो पोताना वीर्य गुणने मात्र सम्यक्
 ज्ञान के आत्म परिणाममांज वापरे तो अनंत
 सुखना स्वामी थाय ॥ २ ॥

अल्प वीर्य क्षयोपशम अछे, अविभाग
 वर्गणा रूपरे ॥ षडगुण एम असंख्यथी;

थाये योगस्थान स्वरूपरे ॥ मन० ॥ ३ ॥

सुहम निगोदी जीवथी, जाव सझीवर
पझात्तरे ॥ योगनां ठाण असंख्य छे, तर-
तम मोहे परायत्तरे ॥ मन० ॥ ४ ॥

अर्थ:-सर्वे छद्मस्थ जीवोत्तुं आत्म वीर्य
क्षयोपशम भावे सदा होय पण सर्वथा आवृत्त थाय
नहिं. जो सर्वथा आवृत्त होय तो चेतनतानो
समूल अभाव थाय तेथी छद्मस्थ जीवोनो पण
वीर्य गुण क्षयोपशम भावे होयज अर्थात् छद्मस्थ
जावोने पण वीर्यांतरायनो सदा क्षयोपशम होय
अने वीर्यांतरायना क्षयोपशम वडे छद्मस्थ जीवोने
अल्पवीर्यनी प्रगटता होय छे अने ते अल्पवीर्यनी
प्रगटताना कारणथी रत्नत्रयनी मलिनताने योगे
पोताना कर्तृत्व स्वभावने लीधे कर्म (क्रिया) रगे
आत्म प्रदेश चलायमान करे छे एटले “ आत्म
प्रदेश परिस्पंदो योगः ” ए सूत्र प्रमाणे योगी
यत्र छे. यद्युक्तं-“ छद्मस्थ वारय लेश्या संगे,
आभिसंधिज मति अंगरे ॥ सूक्ष्म थूल क्रिया

ને રંગે, યોગી થયો ડમંગેરે ॥ ” એમ યોગ વડો
 કર્મનો ગ્રાહક થાય છે. તે યોગનું સ્વરૂપ નિચે
 પ્રમાણે “ વીર્યાતિરાય ક્ષયોપશમોત્પન્નો મનો
 વચન કાય વર્ગણાલંબનઃ કર્માદાન હેતુભૂત
 આત્મપ્રદેશ પરિસ્પંદો યોગઃ ” વીર્યાતિરાય
 કર્મના ક્ષયોપશમ વડે ઉત્પન્ન મન વચન અને કાય
 વર્ગણાનું અવલંબન કરનાર કર્મ ગ્રહણ કરવામાં
 કારણભૂત આત્મ પ્રદેશનું પરિસ્પંદ (સંચલન) તે
 યોગ છે. તિહાં જયન્ય વીર્યવાલો જે જીવપ્રદેશ તે
 ચલી કેવલીના તીક્ષ્ણ બુદ્ધિ રૂપ શસ્ત્રે કરી દેદતાં
 જે વીર્યાશનો વીજો વિભાગ થઈ શકે નહિ તે વીર્ય
 વિભાગ છે અને ભાવાણુ પણ તેનેજ કહીયે. તેવા
 લોકાકાશથી અસંખ્યાત ગુણા જે વીર્યાણુ તેણે
 કરી સહિત જે જીવપ્રદેશ તેનો સમુદાય એટલે
 જીવપ્રદેશની શ્રેણી તે પ્રથમ વર્ગણા, તેથી એક વીર્ય
 વિભાગે અધિક એવી જે જીવ પ્રદેશની શ્રેણી તે
 વીજા વર્ગણા, તે વીર્યવિભાગે અધિક એવી જે જીવ
 પ્રદેશની શ્રેણી તે ત્રીજી વર્ગણા, એમ એકેક વીર્ય-
 વિભાગે અધિક વીર્યવાલા પ્રદેશની શ્રેણી તે ઘની-
 કૃત લોકની એક પ્રદેશિક સૂચી શ્રેણીને અસંખ્યાત

મે ભાગે જેટલા આકાશ પ્રદેશ હોય તેટલી વર્ગીણા
 એક સ્પર્શક થાય, તે પ્રથમ સ્પર્શકનો ઉચ્છ્રુટ ધોર્ગીય
 વર્ગીણાર્થો પડતો હોયો વર્ગીણાર્થો એક ને અથવા
 સંસ્ક્રાન્તે ધોર્ગીવિભાગે અનિશ્ચિત કાંડ જીવ પ્રદેશ
 નથી પરંતુ અસંખ્ય લોકાકાશ પ્રમાણ ધોર્ગીયો
 અનિશ્ચિત જીવ પ્રદેશનો શ્રેણી તે યોજા સ્પર્શકનો
 પ્રથમ વર્ગીણા જાણવો, વળી તેથી એકેક ધોર્ગીવિભાગે
 વધતા વધતા જીવ પ્રદેશનો વર્ગીણા કરી યોજો
 સ્પર્શક થાય, તેથી વળી અસંખ્ય લોકાકાશ પ્રદેશ
 ભાગ પ્રમાણ ધોર્ગીયો અનિશ્ચિત ધોર્ગીયંત જીવ પ્રદેશનો
 શ્રેણી તે ત્રીજા સ્પર્શકનો પ્રથમ વર્ગીણા, છતાં પેરે
 શ્રેણી પ્રદેશ અસંખ્યેય ભાગ પ્રમાણ સ્પર્શકે પડેલું
 જઘન્ય યોગસ્થાનક થાય, તેથી અંગુલના અસંખ્યા-
 તમાં ભાગના આકાશ પ્રદેશ પ્રમાણ સ્પર્શકે વધતું
 ચોજું યોગસ્થાનક હોય, તેથી વળી તેટલેજ સ્પર્શકે
 વધતું ત્રીજું યોગ સ્થાનક હોય, એમ અસંખ્યાના
 યોગસ્થાન થાય. ધોર્ગીયોતરાયના ક્ષયોપશમના અસં-
 ક્ષ્ય ભેદે છે તેથી ઉપર પ્રમાણે યોગના પણ અસં-
 ક્ષ્યાતા ભેદ થાય અર્થાત્ સૂક્ષ્મ નિગોદીઆ લઙ્ઘિ
 અપર્યાપ્તા જીવને ભવ પ્રથમ સમયે સહુથી જઘન્ય
 યોગ હોય છે અને સન્નિ પંચેન્દ્રિ પર્યાપ્તા મનુષ્ય સૌથી

उत्कृष्ट योग पामी शके छे एम मोहनी तरतमता
वशे (वीर्यांतरायना क्षयोपशमना भेद वशे) सूक्ष्म
निगोदिया लब्धिअपर्याप्ता जीवना भव प्रथम
सम्पत्ती मांडी सन्नि पंचेंद्रिय मनुष्य सुधी असं-
ख्यात योगस्थान जाणवां ॥ ३ ॥ ४ ॥

संयमने योगे वीर्य ते, तुम्हें कीधो पंडित
दक्षरे ॥ साध्य रसी साधक पणे, अभिसंधि
रम्यो निज लक्षरे ॥ मन० ॥ ५ ॥

अर्थ:-ज्यांसुधी सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञाननी
प्राप्ति थइ नथी त्यांसुधी संसारी जीव मिथ्यात
अज्ञानवशे पौद्गलीक कार्यने पोतानुं कार्य मानी
वीर्यांतरायना क्षयोपशम वडे प्राप्त थयेला आत्म-
वीर्यने असंयममां अर्थात् स्वपर जीवनी द्रव्यभाव
हिंसामां वापरे छे, पोताना वीर्यने बाल बाधक
भावे परिणमावे छे, पोताना वीर्य वडे कर्मबंध करी
भव भ्रमणनी उपाधि प्राप्त करे छे. पण हे भगवंत !
आपे सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञान वडे पोतानुं शुद्धोप-
योग रूप कार्य जाणी बाल बाधक भावनो परिहार
करी क्षयोपशम वडे प्राप्त थयेला वीर्यने संयम
कार्यमां जोडयुं अर्थात् ज्ञानदर्शन चारित्र्यने निर्मल-

પણે પરિણમવામાં સહાયકારી કર્યું. મન વચન તથા કાયયોગને સંયમ કાર્યમાં જોડ્યા એમ આત્મવીર્યને પંડિતભાવે તથા હિતકારી ભાવે પરિણમાવ્યું. સચ્ચિદાનંદમય શુદ્ધાત્મ દ્રવ્યન પોતાનું શુદ્ધ સાધ્ય જાણી તેનો રસાશ્રા-તે સાધવાના ઉમંગી થઈ અભિસંધિજ વીર્યને જે મતિ પૂર્વક ઉપયુક્ત વીર્ય તે અભિસંધિજ વીર્ય) નિજ લક્ષમાં પડેલે અનંત-સુખે પિંડ જે શુદ્ધાત્મપદ તે સાધવામાં રમાવ્યું-વાપર્યું. એમ અભિસંધિજ વીર્યને શુદ્ધ કારક પ્રવૃત્તિ-માં જોડી અવંધક ભાવે પરિણમાવ્યું ॥ ૫ ॥

અભિસંધિ અવંધક નીપને, અનભિસંધિ
અવંધક થાયરે ॥ સ્થિર એક તત્ત્વતા વર્તેતો
તે ક્ષાયિક ભાવ સમાયરે ॥ મન૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:-એમ હે ભગવંત ! આપનું અભિસંધિજ વીર્ય અવંધક ભાવે વર્તેવાથી અનભિસંધિજ વીર્ય પણ અવંધક ભાવે પરિણમ્યું. મન ચિંતનાપૂર્વક આહાર વિહારાકિ જે કરણ વ્યાપાર તે અભિસં-ધિજ વીર્ય કહીયે અને જે મન ચિંતના વિના કેવલ વચન અને કાયાના વ્યાપાર તે અનભિસંધિજ વીર્ય કહીયે) માટે જેની મનોવૃત્તિ-અંતરંગ ઉપયોગ

અવંધક ભાવમાં વર્તે છે તેની વચન અને કાયાની ક્રિયા પણ અવંધક ભાવમાંજ ગણાય, સંવર હેતુજ ગણાય. યદ્યક્તં-ભાવાસ્ત્રવાભાવમયં પ્રપન્ના, દ્રવ્યાસ્ત્રવેભ્યઃ સ્વતઃ એવ મિશ્રઃ જ્ઞાની સદા જ્ઞાન મયૈક ભાવો, નિરાસ્ત્રવો જ્ઞાયક એક એવ. ” એમ દ્રવ્યસંવર તથા ભાવસંવરના સ્વામી થઈ કર્મવંધનો પરિહાર કરી આત્મવીર્યને નિર્મલ રસ્તવ્રયમાં સહાયભૂત કરી પોતાના નિર્મલ એક પરમાત્મતત્ત્વમાં સ્થિર તલ્લીન પણે વર્તેતાં “ ક્ષાયિક ભાવ સમાયેરે ” શુદ્ધાત્મ પરિણતિનો / વ્યાધાત કરનાર ઘાતીયા કર્મનો સમૂલ ક્ષય કરી અનંત-જ્ઞાન અનંતદર્શન અનંતસુખ અનંતવીર્ય રૂપ પોતાની અનુપમ અવિનશ્વર કેવલ લક્ષ્મીને વર્ષા, તેરમા ગુણસ્થાને વિરાજમાન થયા ॥ ૬ ॥

॥ ચક્ર ભ્રમણ ન્યાય સયોગતા, તજી કીધ અયોગી ધામરે ॥ અકરણ વીર્ય અનંતતા, નિજગુણ સહકાર અકામરે ॥ મન૦ ॥ ૭ ॥

અર્થ:-પદ્ધી ચક્રભ્રમણ ન્યાયે અર્થાત્ ચક્રને ફેરવવા માટે કુંભાર ચક્રમાં દંડ ઘાલી બહુ જોરથી

अर्थ:-हे भगवंत ! तवाग निरंतर शुद्ध परिण-
मता केवल ज्ञानादि गुणोने माहरी चेतना अनुगमे
अर्थात् मारा चैतन्य उपयोग नदनुयायी वर्त्ते, केवल
ज्ञान केवलदर्शन रूप परिणमवानो रसीयो थाय तो
माहंरु अ त्मवार्थ “ स्वरूप समायरे ” राग
द्वेषादि सर्व विभाविक कार्यमां उत्सुक तथा स्फुराय-
मान थतुं अटकी केवल आत्म गुणनेज सहायभूत
पणे वर्त्ते. एम माहंरु वार्थ पंडित भावे अवंधक
पणे वर्त्ततां क्षायिक लब्धिने प्राप्त करशे एज पूर्णपदे
सिद्ध थवानो साचो उपाय छे ॥ ९ ॥

॥ नायक तारक तुं धणी, सेवनथी आत्म
सिद्धिरे ॥ देवचंद्र पद संपजे, वर परमा-
नंद समृद्धिरे ॥ मन० ॥ १० ॥

अर्थ:-हे अनंत वीर्य प्रभु ! आ जगत्त्रयमां
सर्वेथी उत्कृष्ट अनंतवीर्य आपनुं होवाथी आपज
नायक छो, वली भवसमुद्रमां डूवता अव्य प्राणी-
योने आपे निर्माण करेला चरण जहाजे बेसाडी
भवसमुद्रमांथी तारवाने आपज समर्थ होवाथी
तारक छो, वली मोहादि शत्रुंथी रक्षा करवामां
आपज समर्थ होवाथी धणी छो, तेथी हे भगवंत !

आपनेज सेववाथी मारी सिद्धि थशे तथा देवमां
चंद्रमा समान अरिहंत पदनी प्राप्ति थशे तथा
परमानंदरूप उत्तम समृद्धिनी संप्राप्ति थशे. ॥१०॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ नवम श्री सूरप्रभ जिन स्तवनम् ॥

॥ देशी कडखानी ॥

सूर जगदीशनी तीक्ष्ण अति शूरता, तेणे
चिरकालनो मोह जीत्यो ॥ भाव स्यादवा-
दता शुद्ध परगास करी, नीपन्यो परमपद
जग वदीतो ॥ सू० ॥ १ ॥

अर्थ:-अनादिकालाथी लागेलो मोहरूप महान्
शत्रु के जे दर्शन-मोहनीय प्रकृति वडे आत्माना
सम्यक् दर्शन गुणनो, तथा क्रोध वडे आत्माना
क्षमा गुणनो, मान वडे आत्माना मार्दव गुणनो,
माघा वडे आत्माना आर्यव गुणनो, तथा लोभ
वडे आत्माना मुक्ति-निर्लोभ-निस्पृह गुणनो, एम
अनेक गुणनो घात करी आत्मानो शुद्ध सहज
अपरिमित आत्मीय समाधिनी नाश करी भवरूप
जेलखानामां त्रिलोकपूज्य आत्माने केद करी राखे

मे. तेनो (मोक्षतो) जगत्प्रपन्ना ईश्वर, जगत्
 शिरोमणी श्री गुरु प्रभुः अमृतं मोक्षं सम्यक्-
 पराक्रमयो सम्यक् ज्ञान चारित्र्य स्व अमृतं मोक्षं
 समं भेदक शस्त्रो वदे द्विज निज कर्म अल्पकालमां
 पराजय-समूहा नाय कर्मो के अधिप्यमां कोऽपि
 काले एवं दृष्ट कृत्य कर्याने पुनः समुत्थित-संजी-
 वन भाय नहि. अने जीवादि पंचात्मिनां शुद्ध
 स्याद्वादादपि तथा लज्ज लक्षण अभेदादपि शुद्ध
 निश्चय नये निजपर सत्ता जाणी सत्तागते रहेता
 अनंत धर्मात्मक शुद्धात्म द्रव्यने कर्म सत्तया रहित
 अन्यंत शुद्ध प्रगट कर्म जगत् प्रपन्नां पूज्य, प्रशंस-
 नाय, आछादकारी, आदरणीय परमात्म (मोक्ष)
 पद निवजान्यु-संप्राप्त कर्तुं यद्युक्तं-शार्दूल विक्री
 डितम् ॥ “ त्यक्त्वाऽशुद्धि विधायि तत्किल
 पर द्रव्यं समग्रं स्वयं, स्वद्रव्ये रति मेति यः
 सनियतं सर्वापराधच्युतः; बन्धव्वंस मुपेत्य
 नित्य मुदितः स्वज्योतिरच्छोच्छल-चैतन्या-
 मृतपूरपूर्ण महिमा शुद्धा भवन्मुच्यते ” ॥१॥

प्रथम मिथ्यात्व हणि शुद्ध दंसण निपुण,

प्रगट करि जेणे अविराति पणाशी; शुद्ध
चारिप्रगत वीर्य एकत्वथी, परिणति कलुषता
सवि विणाशी ॥ २ ॥ सू० ॥

अर्थ:-हवे श्री सूर स्वामीए परमपूज्य परमात्म
पद जे रीते सिद्ध कर्युं ते साधना क्रम सहित
ब्रह्माणे छे.

प्रथम तो, जेना उदय वडे आत्मा शुद्ध देवने
अश्वेव, अश्वेवने शुद्ध देव, सुगुरुने कुगुरु, कुगुरुने
सुगुरु, धर्मने अधर्म, अधर्मने धर्म, जीवने अजीव,
अजीवने जीव, मोक्षने अमोक्ष, अमोक्षने मोक्ष
मानेछे, जीवादि तत्त्वमां विपरित श्रद्धान करे छे
तथा उत्कृष्ट सीत्तेर कोडाकोडी सागरोपमनी
स्थितिनो बंध करे छे एवी मिथ्यात्वमोहनीय प्रकृति
तथा मिश्रमोहनीय तथा सम्यक्तमोहनीयनो नाश
करी चिंतामणि रहन समान अत्यंत दुर्लभ शुद्ध
निर्मल सम्यक्दर्शन संप्राप्त कर्युं के जे इंद्रत्व, चक्रि-
त्व, चिंतामणि तथा कल्पवृक्षथी पण अधिक दुष्प्राप्य
छे. उक्तंच- “ इंद्रत्तं चक्रिकत्तं, सुरमाणि
कप्पद्दुमस्स कोडीणं । लाभो सुलहो दुलहो, दं-
सणो तीथ्यनाहस्स ॥ ” तथा जे विना नवपूर्व

સુધીનું જ્ઞાનપણ અજ્ઞાન કહેવાય છે તથા જે વિના
 દશમા પૂર્વેનું જ્ઞાન તો થતુંજ નથી, ચલી જે વિના
 સંસાર પરિભ્રમણની સીમા આવતી નથી, જે વિના
 સમ્યક્ચારિત્ર-સંયમની પ્રાપ્તિ થઈ શકતી નથી, જે
 વિના દ્રવ્યચારિત્ર પાલનાર પ્રથમ ગુણસ્થાને વસે
 છે માટે શ્રી જિનેશ્વર, સર્વ ધર્મનું મૂલ તથા મોક્ષનું
 પ્રથમ પગથીયું કહે છે. યદ્યુક્ત-શ્રા મદભયદેવ
 આચાર્યેણ-“ દંસણ મૂલો ધમ્મો, ઉવઙ્ઠો
 જિણવરોહિં સીસાણં । તં સોડણ સકન્નં,
 દંસણ હીણો ન વંદિઁવો ॥ ” લોકાલોક
 પ્રકાશક શ્રી જિનેશ્વર દેવ પોતાના શિષ્યો પ્રત્યે
 સર્વે ધર્મનું મૂલ સમ્યક્દર્શનને યતાવે છે માટે દર્શન
 હીણ પુરુષને વંદના કરવી નહિ. ઉક્તંચ-“ સમ્મત્ત
 રયણ મઠા, જાણંતાં વહુ વિહાવિ સછાઈં ।
 સુદ્ધારાહણ રહિઆ, મમંતિ તછેવ તછેવ ॥”
 સમ્યક્દર્શનથી અષ્ટ પુરુષ વહુ પ્રકારના શાસ્ત્ર
 જાણતા હતાં પણ શુદ્ધ આરાધના રહિત હોવાથી
 સંસાર ચક્ર વ માં જ્યાં ત્યાં ભ્રમણ કર્યાં કરે છે
 કારણકે સમ્યક્દર્શન વિના શુદ્ધ આરાધનાની પ્રાપ્તિ
 હોય નહિ. “ શુદ્ધ ક્રિયા તો સંપજે, પુગ્ગલ

आवर्त्तने अध्वरे ” “ जह मूलंमि विणठे,
दुमस्स परिवार नच्चि परिवुद्धी । तह जिण
दंसण भंठा, मूल विणठा ण सिञ्जंति ॥ ”

जेम मूल विनष्ट, वृक्ष शाखा परिशाखानी
परिवृद्धि पामे नहि, तेम धर्मनुं मूल सम्यक्दर्शन
नष्ट यतां मोक्ष प्राप्ति थाय नहि.

“ जिण पणत्त धम्मं, सद्वहमाणस्स होइ
रयणमिणं । सारं गुण रयणाणय, सोवाणं
पढम मोरकस्स ॥ ”

गुण रत्नाकरमां सारभूत जे सम्यक्दर्शन ते
श्री जिन प्ररूपित धर्मनी श्रद्धा राखनारने होय छे
अर्थात् नयनिक्षेप पक्ष प्रमाण युक्त जिन प्ररूपित
तत्त्वनी घथार्थ श्रद्धा ते सम्यक्दर्शन छे जे मोक्षनुं
प्रथम सोपान (पगथी उं) छे.

“ संजम रहिअं लिंगं, दंसण भठं न संजमं
भाणियं । आणा हीणं धम्मं, निरत्थयं होइ
सव्वंपि ॥ ”

साधुनो लिंग-वेश, संजम विना शोभा पामे

नहि तथा फल पासे नहि. अने सम्यकदर्शन भ्रष्ट
ने संजाम कलुं नर्था एम जिनेश्वरना आणा रहित
सर्वे भर्मक्रिया निरर्थक अर्थात् मोक्ष फल आशा
शके नहि.

तथा योगीनां वीक्षीमां कलुं छे के “ पाण
गुणेंहिं विहिणा, किरिया संसार बहुणी
भाणिया ” ज्ञान गुण वगरनी क्रिया संसार वधार-
नारी कही छे. कारण के सम्यकज्ञान वगर संवर
थाय नहि. अने संवर विना सर्वे समये कर्मबंध
थाय अने कर्मबंधयो संसार वृद्धि थाय ए स्पष्ट छे.
तथा सम्यकदर्शन रहितने व्रत पालना छतां पण
तत्त्वार्थसूत्रमां अव्रती कहे छे “ निशल्यो व्रती”
मिथ्यात्वशल्य, मायाशल्य, अनेनिदानशल्य रहित
व्रतधारी होय ते व्रती छे. तथा बली श्रीमान् यशो-
विजयजी कहे छे के “ रागमल्हार-भार्वाजेरे सम-
कीत जेहयो रुअडुं, ते भावनारे भावो मन करी
परवडुं । जो समकीतरे ताजुं साजुं मूलरे, तो व्रत
तरुरे दीये शिवपद अनुकूलरे । झूटक-अनुकूल मूल
रसाख समकीत, तेह विण मति अंधरे । जे करे
किरिया गर्व भरिया, हते जूठो धंधरे ॥ ” मा टे

जो समकीतमूल ताजूं होय तो व्रततरु शिव फल
आपी शके माटे मोक्षफलना इच्छक पुरुषे सर्वधी
पहेलां समकीत रत्न प्राप्त करवानो उद्यम करवो
ए सार छे. माटे समकीत शी वस्तु छे ते जाणवुं
जोइये.

“ जिय अजिय पुणपावा—सव संवर बंध मुस्क
निझरणा । जेणं सहहइ तयं, सम्मं खड्गाइ
बहु भेअं ॥ ”

जीवा जीवादिक नव तत्त्वनुं स्वरूप श्री
जिनेश्वरना आगम प्रमाणे नयनिक्षेप पक्ष प्रमाणे
यथार्थ जाणी सहहवुं तथा हेय तत्त्वने ढांडवानी
रुची तथा उपादेय तत्त्वने आदरवानी रुची ते
समकीत जाणवुं. तथा च तत्त्वार्थ सूत्रे—“ तत्त्वार्थ
श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्—” “ जीवाजीवास्त्रव
बंध संवर निर्जरा मोक्षास्तत्त्वम्— तेमां जीव-
तत्त्व, संवरतत्त्व, निर्जरातत्त्व, अने मोक्षतत्त्व ए
चार तत्त्व उपादेय छे तथा अजीव आस्त्रव बंध
ए अण तत्त्व आत्म गुणना रोधक होवाथी हेय छे.
माटे उपादेयने आदरवानी रुची तथा हेय तत्त्वने

બોડવાની રુચી હોય તેનેજ સમકીતી જાણવો પણ માત્ર જીવહાથે ચોલવાથી સમકીત નથી. કારણ કે શ્રી જિનેશ્વર સમકીતનાં પાંચ લક્ષણ કહે છે. અને લક્ષણ વિના લક્ષ્યનો અસદ્ભાવ હોય એ ન્યાય છે માટે “ ઉપશમ, સંવેગ, નિર્વેદ, અનુકંપા અને આસ્તિક્યતા ” એ પાંચ લક્ષણો જે જીવમાં ન હોય તે જીવને સમકીત છે એમ કેમ મનાય ?

ઉપશમ—ક્રોધાદિ કષાયોને ઉપશાંત કરે.

સંવેગ—સહજ નિરૂપાધિક પરમાત્મ પદ પ્રગટ કરવાની રુચી.

નિર્વેદ—સંસારને તથા પૌદ્ગલિક વિષયોને હાલાહલ વિષ સમાન જાણી તેથી નિવૃત્તિ થવાની રુચી.

અનુકંપા—સ્વપર જીવના દ્રવ્ય ભાવ પ્રાણ ઘાત કરવાનો પરિણામ નહિ.

આસ્તિક્યતા—અનંતજ્ઞાની અને વીતરાગી આસ શ્રી જિનેશ્વરનું એક પણ વચન અન્યથા ન હોય એવી શ્રદ્ધા.

એમ સમ્યક્જ્ઞાન તથા સમ્યક્ચારિત્રનું મૂલ-
 કારણ સમ્યક્દર્શન છે એમ જાણી શ્રી સૂર પ્રમુજીએ
 દર્શનમોહનીય પ્રકૃતિનો નાશ કરી અત્યંત શુદ્ધ
 નિપુણ ક્ષાયિક સમકીત પ્રગટ કરી “ અવિરતિ
 પળાશી ” પાંચ ઇન્દ્રિય તથા મનનો નિગ્રહ નહિ
 તથા ષટ્કાય જીવના દ્રવ્ય ભાવ પ્રાણની હિંસાનો
 ત્યાગ નહિ એવં ચાર પ્રકારની અવિરતિ તેનો નાશ
 કર્યો. પંચ ઇન્દ્રિયના ત્રેવીશ વિષયોમાં તથા મનના
 શુભાશુભ સંકલ્પોમાં આત્મ પરિણામને વિહ્વિસ
 કરવાથી તથા સ્વપર જીવના દ્રવ્ય ભાવ પ્રાણની
 હિંસાથી જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મનો બંધ થાય છે અને
 કર્મબંધ વડે સહજ આત્મ સમાધિનો ઘાત થઈ
 અત્યંત દુઃખદાયક આ સંસાર સમુદ્રમાં પરિભ્રમણ
 કરવું પડે છે. એમ ક્ષાયિકસમકીત વડે જેણે અદ્વા. પૂર્વક
 જાણ્યું તેનો પરિણામ અવિરતિમાં કેમ પ્રવેશે ?
 એમ અવિરતિનો નાશ થવાથી પરમાત્મ રાગ દ્વેષ
 વિભાવાદિકનો ત્યાગ તથા જ્ઞાન દર્શન ચારિત્રાદિ
 સ્વગુણમાં રમણ રૂપ શુદ્ધ ચારિત્રથી પોતાના આત્મ
 વીર્યની એકતા કરી અર્થાત્ સકલ આત્મ વીર્યને
 સ્વભાવાચરણમાંજ વર્તાવી “ પરિણતે કલુષતા

सवि विणाशी ” आत्म परिणाममां कषायनो
प्रवेश थवा दीधो नहि एम कलुषता परिणतिनो
नाश कर्षो. ॥ २ ॥

वारि परभावनी कर्तृता मूलथी, आत्म
परिणाम कर्तृत्व धारी । श्रेणी आगेहतां वेद
हास्यादिनी, संगमी चेतना प्रभु निवारी ॥
सूर० ॥ ३ ॥

अर्थ:-आत्म स्वरूपना अज्ञान वडे जीव, पर-
भावनो कर्ता बने छे अर्थात् अमुक पदार्थने में
सुवर्ण कर्यो, अमुकने में कुवर्ण कर्यो, अमुकने
में मनोज्ञ रसवालो कर्यो, अमुकने में अमनोज्ञ
रसवालो कर्यो, अमुकने में सुगंधी कर्यो, अमुकने
में दुर्गंधी कर्यो, अमुकने में मनोज्ञ स्पर्शवालो तथा
अमुकने में अमनोज्ञ स्पर्शवालो कर्यो, तथा में सुंदर
असुंदर शब्दादिक कर्यो पण रूप रस गंध स्पर्शादि
जे पुद्गल द्रव्यनो परिणाम तेने आत्मा कदापी
काले करी शके नहि छतां पर द्रव्यना परिणामने अज्ञान
वडे पोतानां क्रिया मानी ले छे. तथा अमुक जावन
में सुखी कर्यो अमुकने में दुःखी कर्यो ॥ परजो-
वना कर्मफलने पोतानी क्रिया मानी ले छे. मन

વચન કાયાના યોગની ક્રિયાનું મમત્વ કરી તે ક્રિયાનો કર્તા પોતાને માને છે. તથા પરજીવે મને સુખી વા દુઃખી કર્યો એમ પોતાના કર્મફલને પર-જીવની ક્રિયા માની લે છે. એવા મિથ્યાભિમાન વડે જ્ઞાનાવરણાદિ કર્મનો બંધ કરે છે પણ શ્રી સૂર-સ્વામીએ સમ્યક્જ્ઞાનવડે એવા મિથ્યાભિમાનનો નાશ કરી પોતાની સહજ આત્મીય જ્ઞાનાદિ ક્રિયામાં પોતાનું કર્તાપણું આશ્વર્ય. યદ્યુક્તં—“ આત્મા જ્ઞાનં સ્વયં જ્ઞાનં, જ્ઞાનાદન્યત્ કરોતિ કિમ ? પરભાવસ્ય કર્તાઽત્મા, મોહોવ્યં વ્યવહારિણામ્ ।” માટે વસ્તુતઃ પરદ્રવ્યનો કોઈપણ કર્તા થઈ શકે નહિ એ ન્યાય છે—“ યઃપરિણમતિ સ કર્તા, યઃપરિણામો ભવેત્ તુ તત્ કર્મ । યા પરિણતિઃ ક્રિયા સા, ત્રયમાપ ભન્નં ન વસ્તુતયા ”

અર્થઃ—જે પરિણમે તે કર્તા છે અને પરિણામ તે તેનું કર્મ છે અને પરિણતિ તે તેની ક્રિયા છે એમ એ ત્રણે ભાવ વસ્તુતઃ અભેદ છે. તથાપિ—“ આ સંસારત ઇવ ધાવતિ પરં, કુર્વેઽહ મિત્યુચ્ચકૈ—દુર્વારં ન તુ મોહિનામિહ મહાહંકાર રૂપં તમઃ ।

तद्भूतार्थं परिग्रहेण विलयं यथैकवारं व्रजेत्,
तर्हि ज्ञान घनस्य बन्धन महोभूयो भवेदा-
त्मनः ॥”

अर्थः—आ जगत्मां मोही अज्ञानी जीवो जाणो
छे के “हूं पर द्रव्यने करूं हूं” एवां पर द्रव्यना
कर्तृत्वना अहंकाररूप अतिशय द्वार अज्ञान अंध
कार अनादिकालधी चाल्यो आवे छे यण जो तेनो
शुद्ध निश्चय ज्ञानवडे एकवार पण समूल नाश करी
नोखे तो शुद्ध केवलज्ञाननी प्राप्ति थाय अने पद्धिधी
कदापि एवा अज्ञान अंधकारने न करे—कर्मबंध करे
नहि. तथा “श्रेणी आरोहतां” क्षपक श्रेणीए
चढतां हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा ए
हास्यादि षट्क तथा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, अने नपुंसक-
वेद, एम नव नोकषायमांथी पोतानी आत्म परिण-
तिने वारी अकषाय भावमां—शुद्ध स्वरूपमां तल्लीन
करी ॥ ३ ॥

भेदज्ञाने यथा वस्तुता उलखी द्रव्य पर्यायमें
थइ अभेदी । भाव सविकल्पतां छदि केवल
सकल, ज्ञान अनंतता स्वामी वेदी ॥ सूर० १४।

અર્થ:-“દ્રવ્યના સર્વે ધર્મો તેના પરમગુણના
 અનુયાયીપણેજ વર્તે” એ અ્યાયાનુસારે! આત્માનો
 પરમગુણ જે ચેતનતા તદનુયાયીપણે વર્તતા જ્ઞાન
 દર્શન ચારિત્ર તપ વીર્યાદિ પરિણામોને પોતાના
 પરિણામ જાણ્યા સદૃશ્યા અને એથી વિપરિત, ચેતન-
 તાનઅનુયાયીપણે નહિ વર્તતા, રૂપ રસગંધ સ્પર્શાદિ
 તથા ચલન સહાયાદિક પરિણામોને પર દ્રવ્યના
 પરિણામ જાણ્યા સદૃશ્યા. એમ ભેદવિજ્ઞાનના પ્રબલ
 પરાક્રમ વડે પોતાના ગુણ પર્યાય તથા પર દ્રવ્યના
 ગુણ પર્યાયને યથાર્થ ભિન્ન ભિન્ન જાણી પર દ્રવ્યના
 ગુણ પર્યાયમાંથી અહંમત્વ ડઠાવો રાગ દ્વેષાદિ
 વિભાવ પરિણામને દુઃખદાયક તથા કર્મબંધનો હેતુ
 જાણી, પોતાની આત્મ ભૂમિમાંથી તેનો તંદન અંશ ત્ર
 કરી, પોતાના ગુણ પર્યાયને પોતાથી અભેદ સ્વરૂપ
 જાણી તેમાંજ અભેદપણે તल्लीન થયા. સકલ્પ
 વિકલ્પ રૂપ સમલ પરિણામને તજી નિર્વિકલ્પ-અચલ
 પરિણામરૂપ યથાશ્યાત્ ચારિત્ર-દ્વાદશમ ગુણસ્થાન
 પામી અંતર મુહૂર્તમાં યાત્રીકર્મનો નાશ કરી શ્રી
 સૂરસ્વામી અનંત જ્ઞાન, અનંત દર્શન, અનંત ચારિત્ર,
 અનંત વીર્યના સ્વામી તથા ભોક્તા થયા. યદ્યુક્તં
 માલિની છંદ-નિજ માહિમરતાનાં ભેદવિજ્ઞાન

શક્ત્યા; ભવતિ નિયતમેષાં, શુદ્ધ તત્ત્વો-
પલમ્ભઃ । અચલિત મશ્વિલાન્ય દ્રવ્ય દૂરે
સ્થિતાનાં, ભવતિ સાંત ચ તાસ્મિન્ન ક્ષયઃ
કર્મ મોક્ષઃ ॥

અર્થ:-જે પુરુષ ભેદ વિજ્ઞાનની શક્તિવડે આત્મ
સ્વરૂપનો મહિમામાં લીને થાય છે તેને નિશ્ચય શુદ્ધ
તત્ત્વની પ્રાપ્તિ થાય છે; અને શુદ્ધ તત્ત્વની પ્રાપ્તિ
થવાથી સર્વ પરદ્રવ્ય તથા પરદ્રવ્યના પરિણામથી
દૂર વર્તે છે, અક્ષય મોક્ષ અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે.
માટે જ્યાંસુધી ભેદ વિજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઈ નથી ત્યાં-
સુધી અવશ્ય સર્વે સમય કર્મબંધ થાય છે અને ભેદ
વિજ્ઞાનવડે કર્મબંધથી મુક્ત થવાય છે.

“ ભેદ વિજ્ઞાન તઃ સિદ્ધાઃ, સિદ્ધા યે કિલ
કેચ ન । તસ્યૈવા ભાવતો વદ્ધા, વદ્ધા યે
કિલ કેચ ન ”

અર્થ:-જે કોઈ સિદ્ધ થયા તે ભેદ વિજ્ઞાન વડેજ
સિદ્ધ થયા છે અને જે કર્મથી બંધાય છે તે ભેદ
વિજ્ઞાનના અભાવથીજ બંધાય છે માટે જો કર્મ-

बंधनो अभाव करवानी रुची होय तो भेद विज्ञान-
सम्यक् ज्ञाननी प्राप्ति करवी ए सार छे. ४ ॥

वीर्य क्षायिकबलें चपलता योगनी, रोधि
चेतन कर्यो शुचि अलेशी; भाव शैलेशीमें
परम आक्रय थइ, क्षय करी चार तनु कर्म
शेषी ॥ सूर० ॥ ५ ॥

अर्थ:-एम श्री सूरस्वामी अनंत चतुष्टयने प्राप्त
करी तेरमा गुणस्थाने तीर्थंकर नामकर्मना उदये
भव्य जीवोने आ दुःखदायक, भव ससुद्रमांथी
तारनार स्यादुवाद नय युक्त जीवाजीवादि तत्त्वनो
उपदेश आपी-पछी प्राप्त करेला क्षायिकवीर्यना
बल बडे, कर्ण वीर्य बडे थती चपलता दूर करी
मेरू पर्वतनी पेठे निःप्रकंप-शैलेशी करण करी, मन
वचन अने कायांनी क्रियानो त्याग करी पोताना
आत्म द्रव्यने पवित्र-पुद्गल परिणामना संश्लेष
रहित-अलेशी करी परम अक्रिय अवस्था धारण
करा, बाकी रहेला वेदनीय, नाम, गोत्र, अने आयु
ए चार अघातीया कर्मनो सर्वथा नाश करी
“पूर्व प्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदा तथा गति
परिणामाच्च ” पूर्वप्रयोगना हेतुए असंग होवाथी

कर्मबंधनो सर्वथा नाश होवाथी तथा गति परि-
णामवडे तुंधीना द्रष्टांते आठमी इशिप्रभारा पृथ्वी
अर्थात् सिद्ध अवस्थामां विराजमान थया ॥ ५ ॥

वर्ण रस गंध विनु फरस संस्थान विनु,
योग तनु संग विनु जिन अरूपी । परम
आनंद अत्यंत सुख अनुभवी, तत्त्व तन्मय
सदा चित्स्वरूपी ॥ सूर० ॥ ६ ॥

अर्थ:-श्री सूरस्वामी सिद्ध अवस्थाने प्राप्त
थया. ते सिद्ध स्वरूप केशुं छे-पांच प्रकारना वर्ण,
पांच प्रकारना रस, बे प्रकारनी गंध, आठ प्रकारना
स्पर्श, छ प्रकारना संस्थान, त्रण प्रकारना योग,
पांच प्रकारना शरीर तथा अंतरंगें अने बाह्य ए बे
प्रकारना परिग्रहथी रहित तथा राग द्वेषादि विभा-
वथी पण रहित होवाथी सर्वे नये अरूपी अवस्थाने
संप्राप्त छे । कारण के जीवन्तु शुद्ध स्वरूप वर्णादि
तथा रागादि भावथी रहित छे. यद्वयुक्तं-“तत्त्व
भवे जावाणे, संसारत्थाण होंति वणाइ ।
संसार पमुक्काणं, णत्थिहु वणादओ केइ ॥
जीवस्स णच्छि वणो, णवि गंधो णवि रसो

ળવિય ફાસો । ણવિ રૂઝં ણ સરીરં, ણવિ
 સંઠાણં ણ સંહણણં ॥ ” પળ સંસાર અવસ્થામાં
 જીવ કર્મબંધયુક્ત હોવાથી શરીરાદિમાં અહંમમત્વ
 કરી વતે છે તેથી વ્યવહાર નયે રૂપી કહેવાય છે.
 જેમ જે ઘડામાં ઘૂત ભરેલું હોય તે ધીનો ઘડો
 કહેવાય પણ વાસ્તવિક રીતે જોતાં ઘડો કાંઈ ધીનો
 નથી. માટીનોજ છે. યદ્યુક્તં “ પદ્મતાપદ્મતય, જે
 સુહુમા વાયરાય જે ચેવ । દેહસ્સ જીવ સળા,
 સુત્તે વ્યવહારદો ઉત્તા ॥ ” પર્યાસ, અપર્યાસ,
 સૂદમ, વાદર, એકંદ્રિય બેઈંદ્રિય વિગેરે શરીરને જે
 જીવ સંજ્ઞા કહી છે તે વ્યવહાર નયની અપેક્ષા
 જાણવી. કારણ કે ચૌદે જીવસ્થાન તે પુદ્ગલ સંગે
 છે, જીવનો મૂલ સ્વભાવ નથી. પણ શ્રી સુરસ્વામી
 તો કર્મબંધથી-સંસાર અવસ્થાથી સર્વથા મુક્ત હો-
 વાથી વ્યવહાર તથા નિશ્ચય બંને નયે શ્રૂપી અવસ્થા
 ભોગવે છે તથા “ પરમ આનંદ અત્યંત સુખ
 અનુભવી, તત્ત્વ તન્મય સદા ચિત્સ્વરૂપી ”
 પરમ આનંદ-સર્વોત્કૃષ્ટ આનંદ જેનું આ ત્રિલોકમાં
 કોઈ ઉપમાન નથી એવા પરમાનંદને તથા જે સુખનો
 કોઈકાલે અંત નથી એવા સહજ અકૃત્રિમ અનુપ-

माच्यो, कारणके आलोक परलोकना विषयसुखनी
 आकांक्षा रहित अरिहंतादि पंच परमेष्ठी तथा
 आगम, साधर्मीक उपर प्रक्षपात बिना गुणीपणा
 माटे जे राग ते प्रशस्तराग जाणवो, ते जोके
 पुण्यबंधनो हेतु छे तथापि छता आत्मगुणने स्थिर
 थवानो तथा नवागुण प्रगट करवानो हेतु छे.
 यद्युक्त " नाणाइसु गुणसु, अरिहंताइसु
 धम्म रूवेसु । धम्मोवगरण साहम्मीएसु
 धम्मच्छ जोय गुण रागो ॥ सो सुपसत्थो
 रागो, धम्म संयोग कारणो गुणदो । पढमं
 कायव्वो सो पत्तगुणे खवइ तं सव्वं " ॥७॥

आत्मगुण रुचि थये तत्त्व साधन रसी, तत्त्व
 निष्पत्ति निर्वाण थावे । देवचंद्र शुद्ध पर-
 मात्म सेवन थकी, परम आत्मीक आनंद
 पावे ॥ सूर० ॥ ८ ॥

अर्थ:-ज्ञानादि अनंत आत्म गुणोने शुद्ध
 संपूर्णपणे प्रगट करवानी रुची थाय-तोज ते पुरुष
 तत्त्व साधनानो रसीउं यह संपूर्ण आत्मतत्त्वनी
 सिद्धि-निर्वाण पद पावे. देवचंद्र मुनि कहे छे के

ध्यावो-राग द्वेषादि सकल विभावधी आत्म परि-
णामने वारी तदनुगत करो. “ चिदानंद रस
अनुभवी ” केवल ज्ञान वडे त्रैकालिक पर्यायो
सहित सर्व द्रव्यना युगपत् प्रत्यक्ष ज्ञाता होवाधी
पोताना आत्म द्रव्यने सर्वदा अखंड अव्याबाध
ज्ञानदर्शनादि गुणे सदा परिपूर्ण, कोइपण द्रव्य
जेने कोइपण काले बाधा करी शके नहि माटे
अबाधित जुए छे; तेथी तज्जन्य निर्भयता-निरा-
कुलता स्वाधीनतामय ज्ञानानंद रसना अनुभवी-
आस्वादन भोग लेनार श्री विशाल देवनी तत्त्व
समाधि सहज अर्थात् स्वाभाविक सर्व पर द्रव्यनी
अपेक्षा वगर मात्र पोतानाज द्रव्यधी उत्पन्न, तथा
अकृत-पर द्रव्ये जेने उत्पन्न करी नथी एवी, तथा
निरूपाधि अर्थात् पौद्गलीक विषयो भोगवतां
अनेक प्रकारनी शारीरिक तथा मानसिक व्याधिउ
उपजे छे, पर रमणरूप मिथ्या चारित्र होवाधी
आत्मगुण घातक अनेक प्रकारनां दुष्ट कर्म बंधाय
छे पण श्री विशाल देवनी समाधिमां कोइपण
प्रकारनी उपाधिनी सद्भाव तथा उपजवानो
संभव नथी तेथी निरूपाधि छे माटे हे गुणानुरागी
भव्य जीवो ! निरुपचरित, निस्संग, निःप्रयासिक,

निर्द्वन्द्व, एकांतिक, आस्पृश्यिक अर्थात् स्वतंत्र समाधि-
मय श्री विशालस्वामीना अरिहंत पदने आपणो
आत्मा निर्मल करो भव अमण्णर्था मुक्त धवा
निमित्त वंदो ये-तेमां लीन थइए, यक्षीश्री विशाल
स्वामी के जे ज्ञानादि अनंत लक्ष्मीना स्वामी तथा
जन्म जरा मरण तथा क्रोध, मान, माया, लोभ,
हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा विमोह
कषाय, अज्ञान जलर्था भरपूर आ अपार पारावार
भयंकर भव समुद्रर्था उद्गारी अचल अन्यायाध
अरुज आत्मीय अनंत सुखना स्थानक मोक्ष महै-
लमां धरनार, सर्वे प्राणीउंना अघातक, करुणा
सागर, तथा अनंतगुणना पात्र महान् धर्मात्मा
छे तेमने स्तवो-स्तुति करो तेमना गुणोनुं गान,
स्मरण, चिंतन, अनुभव करो. ॥ १ ॥

भव उपश्रुधि गद् टालवा, प्रभुजी छो वैद्य
अमोघरे ॥ रत्नत्रयी औषध करी, तुम्हें
तार्या भविजन उंचरे ॥ तुम्हें० ॥ अरि० ॥ २॥

अर्थः-महान् दुष्ट शत्रुरूप कर्मराजाना भवरूप
कारागृहमां वसतां अज्ञान कषाय अने मिथ्यात्व-
रूप मिथ्याआहार विहारना सेवनथी, आत्म

द्वयना ज्ञानदर्शनादि परिणामो दूषितः यथाधी
 आत्माने तीक्ष्णं शल्यं तुल्यं असह्यं दुःखं क्लेशः
 आपनारा क्रोधं मानं मायां लोभं शोकं वियोगं
 मिथ्यात्वं अज्ञानं विगोरे महान् दुर्निवारं सन्निपा-
 तिकं रोगो उपजे छे जे रोगोना प्रभाव बडे बली
 ज्वर, अतिसार, जलोदर, कठोदर, भगंदर, क्षय,
 कुष्ठ, प्रमेह, उपदंश, नेत्ररोग, कर्णरोग, मुखरोग,
 विगोरे अनेक शारीरिक रोग जन्य वेदनाउं भोग-
 ववी पडे छे पथ हे विशाल प्रभुजी ! आपेज
 सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्यनी ऐक्य-
 तारूप अमृत औषधीनुं दान करी ते सर्वे सन्निपा-
 तिक रोगोधी भव्ये जीवोना समूहने मुक्त करी
 अनंत आत्म वीर्य भरपूर तुष्ट पुष्ट करी आंगामि
 कोइ पण काले ते रोग पुनः उत्पन्न न थाय एवा
 अत्यंत निरोगी कर्या. माटे हे प्रभुजी ! आ भुवन-
 त्रयमां निःसंदेहपणे अमोघ-साचा-सफल (जेनो
 उपाय निष्फल जाय नहि एवा) वैद्य आपज छो. ।२।

भवसमुद्र जल तारवा, निर्यामिक सम
 जिनराजरे ॥ चरण जहाजें पामीए, अक्षय
 शिवनगरनुं राजरे ॥ अक्षय० ॥ अरि० ॥३॥

अर्थ:-राग रूप जले परिपूर्ण दृस्तर आ भया-
नक भवसमुद्र के जेमां छुं अनादिकालधी निरा-
धारपणे ज्यां त्यां भ्रमण करी दुःसह भय क्लेश
राग शोक वियोग नृणा आक्रंद विगरे अनेक
दुःखो सहन करुं छुं, अत्यंत सहज समाधिप्रद
माहरी शुद्धात्म भूमिरूप शिवनगरधी अत्यंत
दूरवर्ती-विप्रांगी थइ रह्यो छुं, ते भव समुद्रधी
पारंगत करी निर्धिन्नपणे शिवनगरे पहुँचाइवा
माटे हे विशालप्रभु जिनेश्वर ! आप निर्गमक
अर्थात् जहाजना सौधी अग्रेसर चलावनार छो
माटे जो बीजा सर्वनी आकांक्षा छोडी आपना
स्वभावाचरणरूप पंचमहाव्रतरूप जहाजनो आश्रय
लइए-तेमां अमारा आत्माने स्थापन करीए तो
सहजे लीलामात्रमां निःप्रयासे आ भयंकर भव-
समुद्रधी पारंगत थइ कोइपण रीते जेनो नाश न
थाय-सदा शाश्वत रहेनार एवं शिवनगरनुं नि-
ष्कंटक राज्य पामी एकांतिक शाश्वत सहज परमा-
नंदना स्वामी थइए. ॥ ३ ॥

भव अटवी अति गहनधी, पारग प्रभुजी
सच्छवाहरे ॥ शुद्ध मार्ग देशक पणे, योग

क्षमंकर नाहरे ॥ योग० ॥ अरि० ॥ ४ ॥

अर्थ:-आ भवरूप अटवी-जंगल के जेमां
अमारो आक्रंद परिताप जोड़ करुणा रसवडे जेनुं
हृदय भिंजे तथा अमारी दया करे एवः सदगुरु-
रूप सज्जननो समागम अत्यंत दुःप्राप्य छे तेथी
निर्जन, तथा जेथी पारंगत धवानो साचो-सुगम
मार्ग पामवो अतिशय मुश्किल होवार्थो अत्यंत
गहन-घोर, तथा जेमां अमारी ज्ञानदर्शनादि
अमूल्य आत्म संपदाने लुंटां लेवावाला तीव्र
अज्ञान मिथ्यात्वादि दुष्ट स्वभावना धारक कुगुरु
रूप लुंटाराओ वसे छे, तथा अमारा ज्ञानदर्शनादि
आत्मप्राणनो घात करनार क्रोध मान माया लोभ
विगेरे निर्दय श्वापदो वसे छे एवा घोर जंगलमां
भूलो पडेलो हुं मारा आत्मीय कुटुंब तथा लक्ष्मीना
विधोग वडे दयामणी अवस्थामां भय. आस, रोग,
शोक, विधोग, तृष्णा, आताप विगेरे परितापो
सहन करूं छुं. शांतिप्रद सवर रूप जलना अभाव
वडे अत्यंत तृष्णा क्लेश सहूं छुं तेथी (भवाटवीथी)
पारंगत थइ आत्म लक्ष्मी वडे परिपूर्ण शिवनगरे
दोरी लइ जनार आपज समर्थ सार्धवाह छो. कारण
के आपज शुद्ध-अविसंवाद मार्गना बताववावाला

કલ્યાણકારી મિદ્ધિપદ યોગના નાથ-માલીક-
પ્રણેતા યથાર્થપણે પ્રગટ કરનાર હો. તથા હે નાથ!
આપના મન વચન અને કામ એ ત્રણે યોગ ક્ષેમંકર,
કલ્યાણકારી, પાપ કલેશથી મુક્ત કરનાર છે. અને
સંસારી જીવોએ મન વચન કાયા સ્ત્રી પુત્ર ધન
કુટુંબાદિ અનેક યોગ કર્યા તે યોગ વધુ વાર ચિનાજ
થયા-ક્ષેમ કુશલ ન રહ્યા. પણ પ્રભુજી શુદ્ધાત્મ
અનુભવ યોગકરાવી શાશ્વતી કેવલજ્ઞાનાદિ લક્ષ્મી-
નાં શિવયોગ કરાવો હો માટે યોગક્ષેમંકર હો ॥૪॥

રક્ષક જિન છ કાયના, વલી મોહ નિવારક
સ્વામી રે ॥ શ્રમણ સંઘ રક્ષક સદા, તેણે
ગોપ રૂંડ અભિરામરે ॥ તેણે૦ અરિ૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-જે અજ્ઞાન વિષય અને કષાયાદિ દોષોથી
નિવૃત્ત થયા નથી એવા કુદેવાદિ “ અહિંસક ”
પદને યોગ્ય નથી કારણ કે તેડં સર્વે જીવસ્થાન તથા
સર્વે જીવોના દ્રવ્યભાવ પ્રાણને તથા દ્રવ્ય ભાવ
પ્રાણની હિંસાના હેતુડંને તથા તે હેતુડંના પ્રતિકારને
યથાર્થ જાણતા નથી તથા વિષય કષાયાદિ સહિત
હોવાથી પ્રમાદ અવસ્થામાં અનેક જીવના દ્રવ્યભાવ
પ્રાણને હણી પરને તથા પોતાના આત્માને દુઃખદાયક

थाय छे, पण हे विशालप्रभु ! आप तो अज्ञान विषय अने कषायादिदोषांथी सर्वथानिवृत्त होवाथी पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजःकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय तथा त्रसकाय ए छ कायना जीवोना द्रव्यभाव प्राणना यथार्थ ज्ञाता छो तथा विषय कषायादि दोषोए रहित होवाथी निरंतर अप्रमाद अवस्थामां अवस्थित रही कोइपण जीवना द्रव्यभाव प्राणोने रंच मात्र पण दुषवता नथी माटे सत्य न्याये आ त्रिभुवनमां “जीव रक्षकनुं” विरुद्ध आपनेज लायक छे.

तथा स्थितिबंध अने रसबंधनो हेतु सर्वे कर्मनो राजा तथा संसारी जीवोनो अजीत शत्रु एवा मोहरूप महान् शत्रुथी संसारी जीवोने बचाववा माटे तथा ते मोहने नाश करवानो सांचो उपाय बतावनार तथा ते उपायमां प्रवृत्त थवाने प्रेरणा करनार एक आपज समर्थ शुभट छो तेथी साचा मोहनिवारक पण आपज छो.

तथा अत्यंत दुःखदायक भवाटवीमांथी नीकली अत्यंत कल्याणकारी मोक्ष नगरे जवाना जिज्ञासु, मोक्ष सन्मुख साचा मार्गे गमन करनार, क्रोध मान माया लोभ आदिने दूर करी सप्त परिणामे

चंदरे ॥ मोचक सर्व विभावयी, झोसने
मोह अरींदरे ॥ झी० ॥ अरि० ॥ ७ ॥

अर्थ:-सत्तागते रहेला अनंत आत्मवर्मादे
संपूर्ण शुद्ध प्रगट करवामां अर्थात् आ संसार
समुद्रथी पारंगत थइ मोक्ष अवस्था प्राप्त करवामां
हे विशालप्रभु अरिहंत ! आप पुष्टकारण-अनंतर
कारण हो. उक्तंच-सिद्धसेन पूज्यै: " पुष्ट हेतु-
जिनेंद्रोयं मोक्ष सद्भाव साधने " तेथी सर्वे
मुनिउं-ज्ञानीउंमां चंद्रमा समान प्रधान लोकालो-
कना ज्ञायक आपज आ भयंकर भवसमुद्रमांथी
तारनार हो; तथा राग द्वेष मोह विगेरे सर्वे विभा-
वयी मुक्त करवावाला तथा सर्वे शत्रुउंमां श्रेष्ठ
अत्यंत बलवान् मोह शत्रुथी जीताववावाला
हो. ॥ ७ ॥

कामकुंभ सुरमणि पो, सहजे उपगारी थाय
रे । देवचंद्र सुखकर प्रभु, गुण गेह अमोह
अमायरे ॥ गुण० ॥ अरि० ॥ ८ ॥

अर्थ:-जेम कामकुंभ तथा चिंतामणी रत्न,
विनास्वार्थे अन्य जीवोने वांछित फलना दातार

क्रीडाकरतो निमग्न रह्यो तेथी आत्म स्वरूपने भूली
 शुद्धात्म स्वरूपथी पराङ्मुख थई अत्यंत दुःखदायक
 भवसमुद्रमां भ्रमण करावनार ज्ञानावरणीयादि
 कर्मना आस्रव (पांच प्रकारना मिथ्यात्व, चार
 प्रकारनी अखिरती, पचीस कपाय तथा पंदर योग)
 तथा प्रकृति, स्थिती, अनुभाग अने प्रदेशबंधना
 हेतु राग द्वेष मोहादि विभाव तरफ में रुचि करी
 तथा मिथ्यावासमां अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थाने
 वसतां मिथ्यात्वना आवेशमां सम्यक्दर्शन, सम्यक्-
 ज्ञान, सम्यक्चारित्र्यमग आत्म स्वरूपने भूली अ-
 नेक प्रकारनां कम बांधी तेना दुष्ट फलनो भागी
 थयो अने ते दुष्ट विपाकना अवसरे माहरा पूर्वकृत
 कर्मनो दोष न विचार्यो, अने “ सठ्वे पुठ्व क-
 याणं, कम्माणं पावण् फल विवागं । अवरा-
 हेसु गुणेषु अ, निमित्त मित्तं परो होइ ”
 आ असूत्य जिनवचननुं विस्मरण करी अमुके मने
 क्रोध उपजाव्यो, मानमां पाड्यो, माया तथा लोभ-
 मां प्रवृत्त कर्यो तथा शोक, भय, अरति, जुगुप्सा
 विगरे कषायो उपजाव्या एम कही परने दोष दीधो.
 श्वान जेम लाकडी मारनारने नहीं पण लाकडीने
 करडवा तथा भसवा मांडे छे तेम में पण मारा

પૂર્વકૃત દુષ્ટ કર્મ તરફ લક્ષ્ય નહિ દેતાં નિમિત્તમાત્ર
 જે પરદ્રવ્ય તેને દોષ દીધો અને હાલ પણ તેમજ
 વર્તેલું “ જો કત્તા સો મોત્તા, ” એવા જગ-
 જાહેર તથા સર્વમાન્ય જિનેશ્વરના વચનનો નિરા-
 દર કર્યો, ॥ ૨ ॥

અવગુણ ઢાંકણ કાજ કરું જિન મત ક્રિયા,
 ન તજું અવગુણ ચાલ અનાદિની જે પ્રિયા:
 દૃષ્ટિ રાગનો પોષ તેહ સમકીત ગણું, સ્યાદ્-
 વાદની રીત ન દેલું નિજપણું ॥ ૩ ॥

અર્થ:-અનાદિથી અજ્ઞાન વશે પ્રિય થઈ પડેલી,
 કુદેવ, કુગુરુ અને કુધર્મને સન્માનવા આદરવા રૂપ
 મિથ્યાત્વ અજ્ઞાનની તથા ક્રોધ, માન, માયા, લોભ,
 હાસ્ય, રતિ, અરતિ, ભય, શોક, જુગુપ્સા તથા
 વેદરાગ વિગેરેની દુષ્ટ ચાલ પ્રકૃતિનો તો ત્યાગ
 કર્યો નહિ અને કદાચ શ્રી જિનેશ્વરે બતાવેલી
 સામાયિક, પોસહ, પ્રતિક્રમણ, વંદન, સ્તવન, પૂજા
 વિગેરે ક્રિયાઓ, અપમાન નિંદા તથા દુરાચરણ ઢાં-

नाय, धर्मोपदेशो जनं रजनाय ” एम विप
 गरल अने अन्गोन्पानुष्टान सेवतां संसारीक दुःख
 थी मारी निवृत्ति थइ नहि. कारण के “ निच्युष्टो
 तंवेलो, पासेण विणा न होइ जह रंगो; तह
 दाण सील तव भावणाओ अहलाओ भाव
 विणा ” जेम जुना विना तांवल, अने पास विना
 वस्त्र रंग पामे नहीं तथा जेम अंक विना मींडां
 निष्कल थाय तेम शुद्धात्म भाव रहित दान, शील,
 तप अने भावना संसारथी मुक्त करी शके नहीं.
 जल विना जेम सरोवर, सुगंधी विना जेम कमल,
 चंद्रमा विना जेम रात्री, सूर्य विना जेम दिवस,
 तथा जीव विना जेम शरीर शोभा पामतां नथी;
 तेम भाव वगर साध्य निरपेक्ष क्रियाओ शोभा पा-
 मती नथी. पण जो ते आवश्यक आदि करणीओ
 भावपूर्वक करवामां आवे तो ते मोक्षनुं कारण
 थाय. जेम अंक सहितनां मींडां दशगुणी सख्या
 वधारनार थाय छे. माटे भावनुं स्वरूप जाणवुं
 जोईए. “ उवओगो भाव इति ” अर्थात् सूत्रनी
 साखे वीतरागनी आज्ञाए ज्ञान पूर्वक हेय उपादे-
 यनी परीक्षा करी अजीव तत्त्व तथा आस्रव तत्त्व

તથા વંધે તત્ત્વ ડપર ત્યાગ ખાવ અન્ને જીવના ગુણ
 જે સવર, નિર્જરા, મોક્ષ તત્ત્વ ડપર ઉપાદેય પરિ-
 ણામ તે ખાવ છે. માટે શુદ્ધાત્મ ખાવ સન્મુખ
 અર્થાત્ આપણા આત્માને રાગ, દ્વેષ, મોહથી માત્ર
 નિવૃત્ત કરવાના પરિણામ સહિત જો આવશ્યકાદિ
 કરણીઓ કરવામાં આવે તો તે અવશ્ય મોક્ષનું કારણ
 થાય. વલી “ સમ્મત્તેણં સુદ્ધો, સચ્ચસુ કિચ્છે
 હવડ સિવ હેડ, સંવર વુઢી તહ નિજરાય
 ધમ્મ મૂલં ચ સમ્મત્ત ॥ ” તથા “ મૂલં દારં
 પડ્ઠાણં, આહારો ખાયણં નિહિ; દુસુકં સાવિ-
 ધમ્મસ્સ સમ્મત્તં પરિકિં યં ॥ ” શુદ્ધ સમકિત
 તેજ શિવનો હેતુ, તથા સંવરની વૃદ્ધિ કરનાર,
 નિર્જરાનું કારણ હોવાથી સર્વે ધર્મનું મૂલ, તથા
 મોક્ષ મહેલમાં પ્રવેશ કરવા માટે દ્વાર સમાન, ચા-
 રિત્ર મહેલની પીઠિકા, તથા રત્નત્રયના ખાજન
 રૂપ છે. એવાં આપનાં પવિત્ર વચનો વાંચી સાંભલી
 મેં સમકિતને અમૂલ્ય રત્ન સમાન તો જાણ્યું પણ
 હે ભગવંત ! આપ તો “ નય ભંગ પમાણેહિં, જો
 અપ્પા સાયવાય ખાવેણ, જાણડ મોરક સરૂવં,
 સમ્મદિઠિડ સો નેઓ ” નય ભંગ પક્ષ પ્રમાણ

સહિત સ્યાદ્વાદનયે જીવાદિ તત્ત્વને યથાર્થ જાણે છે તેમજ શ્રદ્ધા કરે છે તથા હેયને સ્યાગ કરવાની તથા ઉપાદેય ભાવને આદરવાની રુચિ હોય તેને સમકીર્તી કહો છો. પણ તે પ્રમાણે તો મેં સ્યાદ્વાદનયે આત્મ તત્ત્વનું સ્વરૂપ યથાર્થ જાણ્યું, સદ્દેહ્યું નહિ તથા સમકિતના જે સડસઠ (ચાર સદ્દેહના, ત્રણ લિંગ, દશ પ્રકારે વિનય, ત્રણ શુદ્ધિ, પાંચ દૂષણનો નાશ, આઠ પ્રકારે પ્રભાવિક પાણું, પાંચ ભૂષણ, પાંચ લક્ષણ, છ યતના, છ આગાર, છ ભાવના તથા સમકિતનાં છ સ્થાનક) બોલ આપે કહ્યા છે તે જાણ્યા શિવાય તથા જે હોવા જોઈએ તેની મારામાં પ્રગટતા થઈ છે કે નહિ, તેનો વિચાર કર્યા વિના, સમકીર્તના લક્ષણોની પ્રાપ્તિ વિના, માત્ર દૃષ્ટીરાગના પોષને અર્થાત્ નય, નિક્ષેપ, પક્ષ, પ્રમાણ વડે પરીક્ષા કર્યા શિવાય કુલક્રમાનુગત દેવ ગુરુ ધર્મની દ્રવ્યપરંપરાય શ્રદ્ધાને સમકિત ગણી ક્રિયાનુષ્ઠાન સેવ્યાં પણ નિશ્ચય સમકીર્ત વિના મને મોક્ષ ફલની પ્રાપ્તિ થઈ નહિ. ॥ ૩ ॥

મન તનુ ચપલ સ્વભાવ વચન એકાંતતા,
વસ્તુ અનંત સ્વભાવ ન ભાસે જે છતાં । જે
લોકોત્તર દેવ નમું લૌકીકથી, દુર્લભ સિદ્ધ

स्वभाव प्रभो तहकीकथी ॥ ४ ॥

अर्थ:-जेम पुंगीना स्वरमां लीन थइ नाग
पोताना मस्तकने पुंगी प्रमाणे डोलावे छे. तेम हुं
पण पांच ईंद्रियोना विषयोमां लीन थइ माहरा
आत्म परिणामने चपल करी कर्मजालमां फसायो
“ चलइ फंदइ ” तथा मिथ्यात्वना आवेशमां
अनंत धर्मात्मक वस्तुमांथी कोइक धर्मने मुख्यतया
वखाणतां बाकीना धर्मोनी गौणपणे पण अपेक्षा
नहि राखवा रूप एकांत वचन अर्थात् दुर्नयने
ग्रहण कर्यो, ते प्रमाणे में वस्तु स्वरूप सहहुं तथा
बीजाने पण तेमज एकांते उपदेश आप्यो “ दो-
हिंवि णयेहिं णीयं सत्थं मूलण तहवि मिच्छत्तं;
जस्स विसयप्पहाणं, तणेणं अणुण्णा निरवेरकं ”
इति विशेषावश्यके-पण अनंत धर्मात्मक वस्तु
स्वरूपने में यथार्थ जाण्यु नहि “ अभिलाप्ये
भावेभ्यः अनभिलाप्या अनंत गुणा ” एम
अनंत गुण पर्यायिनी भाजन ते द्रव्य-वस्तु छे माटे
दरेक वस्तुमां अनंत भाव छता छे-मालिनिछंद-
“ बहु विह नय भंगं, वच्छु णिच्चं अणिच्चं ।

सद सदनाभिलप्पं, लप्पमेगं अणेगं” ते में
एकांत-मिथ्यात्व वशे न जाण्या-एम मिथ्यात्व
भावमां फसी रह्यो अने तेथी इंद्रगणे वंदित, त्रि-
लोक पूज्य जे लोकोत्तर अरिहंत देव तेओने लौकीक
रीते अर्थात् अज्ञान अने राग सहित, परभावना
कर्त्ता हर्त्ता जाणी आलोक परलोक संबंधी विषयो-
नी प्राप्ति अर्थे, तथा मान पूजा आदि अर्थे नमुं
हुं-वंदन स्तवन पूजा प्रमुख करुं हुं पण तेथी
जिनेश्वरे बतावेलो जे अत्यंत दुर्लभ सिद्ध स्वभाव
तेनी प्राप्ति केम थाय ? ॥ ४ ॥

महाविदेह मझार के तारक जिनेवरु, श्री
वज्रधर अरिहंत अनंत गुणाकरू । ते नि-
र्यामक श्रेष्ठ सही मुज तारशे, महा वैद्य
गुणयोग रोग भव वारशे ॥ ५ ॥

अर्थ:-महाविदेह क्षेत्रमां विचरता आ भीम
भवार्णवमांथी भव्य समूहनो उद्धार करनार, सर्वे
केवलीओमां इंद्र समान, शिरोमणी, ज्ञानादि अनंत
गुणना आकर-निधान हे वज्रधर अरिहंत ! आप,
चरण जहाजने चलावनाराओमां अग्रेसर-प्रधान
सर्वोत्तम निर्यामक होवाथी आ भयंकर भवाब्धि-

માંથી નિઃસંદેહ અતિ ત્વરાએ માહરો ઉદ્ધાર કરશો
તથા મહાવૈવિધ્ય સ્વપ થઈ માહરા આત્મ પરિણામમાં
સમ્યક્દર્શન જ્ઞાન ચારિત્રનો યોગ કરી મિથ્યા
આચરણ વડે ઉપજેલા ભવરોગનો વેગે સમૂલ વિનાશ
કરશો એવી માહરા ચિત્તને દૃઢ પ્રતિત છે. ॥ ૫ ॥

પ્રભુ સુખ ભવ્ય સ્વભાવ સુખું જો. માહરો,
તો પામે પ્રમોદ એહ ચેતન સ્વરો । થાયે
શિવપદ આશ રાશિ સુખ વૃંદની, સહજ
સ્વતંત્ર સ્વરૂપ સ્વાણ આણંદની ॥ ૬ ॥

અર્થ:—“ ભવન વ્યય વિણુ કાર્ય ન નિપજે
હો, જિમ દરદે ન ઘટત્વ ” તેમજ જેમાં ભવ્ય
અર્થાત્ પલટન સ્વભાવ નથી એટલે જે જીવમાં
મિથ્યાત્વથી પલટી સમકીત ભાવે પરિણમવાનું
સામર્થ્ય નથી તેને અભવ્ય કહીએ તથા અવિરતીથી
પલટી વિરતીભાવે પરિણમવાનું સામર્થ્ય નથી તથા
પ્રમાદ ભાવથી પલટી અપ્રમાદ ભાવે પલટવાનું
સામર્થ્ય નથી, તથા કપાય ભાવથી પલટી અકપાય
(શમ) ભાવે પરિણમવાનું સામર્થ્ય નથી (એટલે
પૂર્વ અહિતકારી) પર્યાયનો વ્યય, નવા પ્રશસ્ત

भाववडे “ हुं भव्य हुं ” एवु अनुमान थायळे तो पण हे सर्वज्ञ देव ! आपना मुखारविंदधी “ तुं भव्य हुं ” एयुं वचन सांभलुं, तो माहरा भव्यत्वनी मने संपूर्ण पणे प्रतीत थाय अने सहज स्वतंत्र सच्चिदानंदमय अनंत सुख समूहरूप शिवपदप्राप्ति-नो भरोसो थाय ॥ ६ ॥

वलभ्या जे प्रभु नाम धाम ते गुण तणा,
धारो चेतन राम एह थिर वासना ॥ देवचंद्र
जिनचंद्र हृदय स्थिर थापजो, जिन आणा
युत भक्ति शक्ति मुज आपजो ॥ ७ ॥

अर्थ:-हे भगवंत ! जे पुरुषो आपना स्मरण, कीर्तन, भक्ति विगरेमां लीन छे तेज पुरुषो गुणना धाम कहेतां भाजन छे. माटे हे चेतनराम ! निरंतर प्रभुना स्मरणमां थिर वासकर, एक पण समय प्रभुपदने विसार नहि. देवचंद्र मुनि कहे छे हे जिन-श्वर देव ! मने लब्धि वीर्यनुं दान करी आपनी आज्ञा प्रमाणे आपनी भक्ति करवानी मने शक्ति आपो कारण के आपनी आज्ञाधी विपरीतपणे करे-लां सर्वे क्रिया अनुष्ठान निष्फल छे. “ जो कोइ आणा रहिओ, पूआ पमुहं करेइ तिकालं ।

तस्मादि सत्त्वम सुद्धं, आणाचड्जं अणुट्ठाणं ॥”
 जे कांइ पुरुष आज्ञा रहित पणे त्रणे काल पूजा
 प्रभुत्व करणी करे तो पण आणा रहित होवार्था तेनुं
 सर्वे अनुष्ठान अशुद्ध जाणवुं. “ जह तुम खंडण
 मय मंडणाइ रूपणाइ सुन्न रत्नंभि ॥ विहलाइ
 तह जाणसु, आणा रहियं अणुट्ठाणं ” जेम
 तुम-कृमिकानुं खांडवुं, सुडदाने शरणमारवुं तथा
 सुना वगडामां विलाप करवो निष्फल हे तेम जिन
 आज्ञा वगानुं अनुष्ठान पण निष्फल जाणवुं.
 “ जह भोग्यमविहिकयं, विणामए विहिकयं
 जियावेई; तह अविहिकओ धम्मो, देइ भवं
 विहिकओ मुरकं ” जेम अविधिए करेलुं भोजन
 विनाश करे तथा विधिए करेलुं भोजन जीवन आपे
 तेमज अविधिए आदरेलो धर्म भवभ्रमण आपे अने
 विधिए आदरेलो धर्म मोक्ष सुख आपे; माटे
 आपनी आज्ञानुं ज्ञान तथा ते आज्ञामां वसवा रूप
 सदाचरण ए वनेलुं हे करुणानिधान ! मने दान
 आपो. ॥ ८ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ श्री द्वादशम श्री चंद्रानन जिन स्तवनम् ॥

॥ वीराचांदला ए देशी ॥

चंद्रानन जिन सांभलिये अरदासरे, मुज
सेवक भणी. छे प्रभुनो विश्वासरे चंद्रानन
जिन ॥ १ ॥

अर्थ:-हे भगवंत ! आप पी तेमज अरूपी
निकटवर्ती तेमज दूरवर्ती, सूक्ष्म तेमज स्थूल, सर्वे
पदार्थोंन तेना त्रैकालिक गुण पर्याय सहित एक
समग्रमां हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष जाणनार होवाथी
सर्वज्ञ, तथा अनंत आनंदमां पोताना गुणपर्या-
योमां निरंतर तल्लीन-स्थिर होवाथी अन्य कोइपण
द्रव्य पर्यायमां आपनो राग द्वेषरूप परिणाम थतो
नथी तेथी वातराग छो, अने सर्वज्ञ तथा वीतराग
होवाथी आपनी दिव्य वाणीमां प्रत्यक्ष परोक्षादि
कोईपण प्रमाणवडे विसंवाद आवी शकतो नथी,
कोईपण प्रकारना रंचमात्रपण दूषणने अवकाश
मलतो नथी; माटे हे प्रभु ! आपज आ भीषण
भवसमुद्रमांथी भव्य समूहने उद्धारवा समर्थ छो.
पण आपथी विमुख बुध कपिलादि अन्य तीर्थीओ
के जे तेथीनां आचरण तथा वाणीवडे अज्ञान तथा

राम छेपादि दूषणोगुरुक भरपूर कलकित प्रतीत
 भाग छे, भवसमुद्रमां निमग्न जणाय छे, अने तेथो
 तेथोना वचनमां प्रत्यक्ष परीक्षादि प्रमाणवडे अनेक
 दूषणो द्रष्टिगोचर भाग छे, तेथो भवसमुद्रमांथो
 केम उद्धारो शके ? “ जे नवि भव तर्या निर्गुणी
 तारशे किणपरे तेहरे ” माटे पांते बुडनार तथा
 आश्रितने बुडावनार पत्थरनी नावनो केम विश्वास
 रखाय ? तेथो हे त्रिलोक पूज्य ! आ भवसमुद्रमांथो
 मुक्त भवा माटे हुं सेवकने आपनोज विश्वास-आ-
 धार छे, माटे समतारूप अमृत समुद्रने वृद्धिगत
 करनार, तथा भव्यरूप कुमुद समूहने विकश्वर
 करनार, तथा कषाय तापने समाववासां, आत्म-
 वायनी वृद्धि करवामां समर्थ एवी तत्त्वोपदेशरूप
 निर्मल चांदनीने आ भूमंडलमां फेलावनार हे जगत्
 चूडामणि चंद्रानन त्रिनेश्वर ! अज्ञान तथा कषाय
 जन्य दुःखथी भयभीत थएलो हु भवभीरु आप
 प्रति विनंती करुं छु ते कृपाकरी सांभलो-अवधारो.

भरतक्षेत्र मानवपणारे, लाध्यो दुःसम काल ॥

जिन पूरवधर विरहथीरे, दुलहो साधन चा-
 लोरे ॥ चंद्रानन० ॥ २ ॥

अर्थ:-मेरुपर्वत जेटला राइना ढगलामां पडो
 गयेलो सरसवनो दाणो मली शकवो जेम अत्यंत
 मशकलं छे तेमज मनुष्य भव पण आ भवसमुद्रमां
 भ्रमण करतां पासवो अत्यंत दुर्लभ छे तेंम छतां
 कदाच मनुष्य भवनी प्राप्ति थाय तो, आर्यक्षेत्र,
 लांबु आयुष्य, नीरोगता, उंचकुल विगरे उत्तरोत्तर
 अतिशय दुःप्राप्य छे छतां ते सर्वे सामग्रीओ कोई
 माहरा महत् पुण्य प्रसादे आ दुःषमकालमां (पांच-
 मा आरामां) हे चंद्रानन प्रभु ! मने प्राप्त थइ पण
 केवलज्ञानी, चौद पूर्वधर, दश पूर्वधर, तथा प्रत्येक
 बुध के जेओ तत्त्वना यथार्थ ज्ञाना उपदेष्टा छे, जेनां
 वचनो प्रमाण भूत छे, निशंकपणे विश्वास पात्र छे,
 जेना वचनानुसारे सर्वेनां वचनो परखी सकाय छे,
 एवा गुण समुद्र पूज्य पुरुषोना वियोग वडे सहजा-
 नंदरूप मोक्षपद साधवानो साचो मार्ग अतिशय
 दुर्लभ थइ पड्यो छे. ॥ २ ॥

द्रव्य क्रिया रुचि जीवडा रे, भाव धर्म रुचि
 हीन ॥ उपदेशक पण तेहवारे, शुं करे जीव
 नवीनरे ॥ चंद्रानन० ॥ ३ ॥

अर्थ:-हे भव्यो ! अनादिकालधी आपणो आत्मा
 जे अज्ञान, मिथ्यात्व, अने कषाय वडे मलीन होवा-

થી આ ભયાનક ભવસમુદ્રમાં ભ્રમણ કરતાં જન્મ
જરા મરણ રોગ શોક વિયોગ તાડન તર્જન આદિ
અનેક પ્રકારનાં શારીરિક લેમજ માનસિક દુઃખો
સહન કરે છે, પોતાની અનંત આનંદમય દશાથી
દૂરવર્તી થઈ રહ્યો છે, તેથી અજ્ઞાન મિથ્યાત્વ અને
કષાયાદિ દૂષણોથી મુક્ત કરી, અનંત જ્ઞાન દર્શન
સુખ વીર્યમય પરમ નિર્મલ શુદ્ધ સિદ્ધ પદમ વિ-
રાજમાન કરવો અર્થાત્ પૂર્ણ શુદ્ધાત્મ ભાવ પ્રગટ
કરવો-પ્રાપ્ત કરવો, એજ આપણું પરમ કર્તવ્ય છે
તથા એજ આપણું સર્વોત્કૃષ્ટ અનંત સુખપ્રદ અવિ-
નશ્વર સાધ્ય છે. પણ મોહનિય કર્મના પ્રવલ ઉદય
વડે પોતાના સર્વોત્કૃષ્ટ સાધ્ય સાધવાની રુચિથી
પરાજ્ઞસુખપણે ધર્મનું મૂલ જે સમકીત (સમ્મત્તેણં
સુધ્ધો, સચ્ચસુ કિચ્છો હવડ્ સિવહેઉ, સંવર
વુઢી તહ નિજ્જરા ય ધમ્મ મૂલં ચ સમ્મત્તં)
તે પ્રાપ્ત કર્યા વગર પોતાના દુષ્કૃતો ઢાંકવા માટે,
અથવા માન પૂજાને અર્થે, અથવા આ ભવ સંબંધી
કામભોગના પદાર્થો મેલવવા માટે, અથવા દેવાદિક
ગતિના મનોહર વિપુલ ભોગો પ્રાપ્ત થવા માટે ઘણા
જીવો સામાયિક, પ્રતિક્રમણ પચ્ચાણ, તથા સમિતિ
પરિસહસહનાદિ અનેક દ્રવ્ય ક્રિયાઓ ચિ સહિત

आदरे छे पण हे भगवंत ! ते सर्वे क्रियाओ शुद्ध
 साध्य निरपेक्ष अर्थात् परमार्थ विमुख होवाथी विष,
 गरल, तथा अन्यानुष्ठान रूपे आसव हेतु थइ पडे
 छे. यद्युक्तं श्री आचारांग सूत्रे “ जे आसवा
 ते परिसवा, जे परिसवा ते आसवा ” माटे ते
 बालकनी क्रियावत् निर्वाण पद आपवाने असमर्थ
 छे, उक्तं च परमहन्निदुअटिदो जो कुणइ तवं वयंच
 धारेइ, तं सव्वं बाल तवं, बालवयं विति सव्वण्हू॥
 वयणियमाणि धरंता, सीलाणि तहा तवंच कुव्वंता ।
 परमह्वाहिरा जे, निव्वाणं तेण विंदंति ॥ तथा
 उपदेश मालायाम्-संसार सागर सिणं, परिभमं-
 तेहि सव्व जीवेहिं । गहियाणि अ मुक्काणिय,
 अणंतसो दव्व लिंगाइं-अर्थ:-अरे आ संसार
 ससुद्रमां परिभ्रमण करतां जीवोए द्रव्यलिङ्ग अनंती-
 वार ग्रहण कर्या छोड्या पण ते द्रव्यलिङ्ग, समकित
 रहित तथा साध्य निरपेक्ष होवाथी सिद्धिना हेतु
 थइ शक्या नहि. जेम घटनो ईच्छक कोइ कुंभार
 घट उत्पन्न करवानां साधनो जे दंड चक्रादि तेनो
 रात दिवस निरंतर घणो व्यापार करे पण साध्य
 जे घट ते सिद्ध करवा तरफ जो लक्ष आपे नहि

अर्थात् माटीने चक्र ऊपर चूकी तेमांथी स्थास कुशल बुध्नादि पर्यायो निपजावे नहि तो कोइ पण फाले घट सिद्ध थाय नहि. पण जो ते घट सिद्ध करवा तरफ लक्ष स्थापी स्थास कुशल बुध्नादि पर्यायो उपजाववानां दंड चक्रादिनां योग्य व्यापार करे तो अवश्य घट सिद्धि करी शके अने तयारेज तेनो दंड चक्रादिनां सर्वे व्यापार सफल कहेवाय तेमज भवभ्रमणधी उद्विग्न थगल भव्य जीव शुद्धात्म भाव सिद्ध करवानी रुचि धरी ते तरफ पुरतो लक्ष आपी गुणस्थान प्रमाणे योग्य व्यवहार आदरे अर्थात् प्रथम समकीत गुण प्राप्त करवानो व्यवहार आदरे कारण के ते मोक्षनुं प्रथम पगथीउं छे “ जिन पणत्तं धम्मं, सद्वहमाणस्स होई रयण भिणं ॥ सारं गुण रयणाणय, सोवाणं पढम मोरकस्स ” पळी देश विरति सर्वविरती थवानो व्यवहार आदरे, पळी अप्रमत्तादि गुण स्थान प्राप्त थवानो योग्य (आगम प्रणीत) व्यवहार आदरे तो केवलज्ञानादि अनुपम लक्ष्मीनो स्वामी थाय, पोतानुं अजर अमर शुद्धात्म (निर्वाण) पद प्राप्त करे. अने तेम करतां तेनो व्रत तप पच्चखाण प्रति-क्रमणादि सर्वे व्यवहार सफल कल्याणकारी कहे-

वाय, पण हे चंद्रानन प्रभु ! अनादि वाल्मी पुद्गलद्रव्यनागुण पर्यायोने अनुभवता, तेमांज तल्लीन थएला संसारी जीवोने सम्यक् दर्शन ज्ञान चाग्रिच रूप भावधर्मनी रुचि कयांथी थाय ? जो कदाच एम पोतानी मेले थवी सुरैल तो सद्गुरुना उपदेश वडे पण थइ शके पण आ निकृष्ट पंचम आ-रामां भावधर्मेनां स्थापन करनार परमोपकारी सद्गुरुनी अतिशय चिरलता अने भावधर्म एक कोरे मूकी साध्य शून्य द्रव्यक्रियामां लगाडनार उपदेशको घणा. ए विषे न्याय विशारद श्रीमद् यशोविजयजी कहे छे—“ ज्ञान दर्शन चरण गुण चिना, जे करावे कुलाचाररे, लुंटीया तेणे जन देख-तां, किहां करे लांक पोकाररे ॥ काम कुंभादिक अथिकनुं, धर्मनुं को नचि मूलरे, दोकडे कुगुरु ते दाखवे, शुं थयुं एह जग मूलरे ॥ अर्थनी देशना जे दिये, ओलवे धर्मना ग्रंथरे; परम पदनो प्रगट चोरथी; तेहथी केम वहे पंथरे ॥ विषय रसमां गृही माची-या, नाचीया कुगुरु मद पूररे; धूम धामे धमाधम चली, ज्ञान मारग रह्यो दूररे ॥ कलहकारी कदाग्रह भर्या, थापता आपणा बोलरे; जिन वचन अन्यथा दाखवे, आज तो बाजते ढोलरे ॥ केइ निज दोषने

બહુ શિષ્યે પરિવરિઓ; તિમ તિમ જિનશાસનનો
 વૈરી; જો નવિ નિશ્ચય દરિયોરે-તથા ઉપદેશ માલા-
 યામ્: “ જહ જહ બહુ સુઅસમઓ, સીમ ગણ
 સંપરિવુદ્ધોય; અવિળીચ્છિઓ અસમણ, તહ તહ
 સિદ્ધંત પડિળીઓ. ”

આળા સાધ્ય વિના ક્રિયારે, લોકે માન્યો રે
 ધર્મ । દર્શન જ્ઞાન ચરિત્તનોરે, મૂલ ન જા-
 પ્યો મર્મરે ॥ ચંદ્રાનન૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-દર્શન જ્ઞાન ચારિત્રનો મૂલ મર્મ જાણ્યો
 નહિ અર્થાત્ સત્તાણ અનંત જ્ઞાન દર્શન ચારિત્ર મય
 સિદ્ધ સમાન સર્વે જીવો છે, પણ અનાદિથી કર્મ
 મલ સંબંધે અશુદ્ધ હોવાથી જ્ઞાન દર્શન અને ચારિત્ર
 રૂપ શુદ્ધાત્મ સ્વભાવથી વિપરીતપણે મિથ્યાત્વ,
 અજ્ઞાન, અને કષાય રૂપ પરિણમે છે, પોતાના આત્મ-
 વીર્યને તેમાં વાપરે છે અને તેથી નિરંતર સાત આઠ
 પ્રકારનાં કર્મ વાંધી ભવસમુદ્રમાં પરિભ્રમણ કરતાં
 અનેક પ્રકારની શારીરિક તથા માનસિક અસહ્ય
 વેદનાઓ ભોગવે છે. પણ તે મિથ્યાત્વ, અજ્ઞાન, અને
 કષાયને તીવ્ર દુઃખ દાતાર તથા અઘ્રૂટ સહજાનંદ

लूटनार महान् शत्रुओ जाणी तैमां पोताना आत्म-
वीर्यने नहि वापरतां जीवादि तत्त्वोना यथार्थ
अद्वानरूप सम्यक्दर्शन, तथा ते जीवादि तत्त्वोने
नयनिक्षेप पक्ष प्रमाणादि सहित संशय, विभ्रम
अने विमोह रहित अद्वान पूर्वक जाणवा रूप
सम्यक्ज्ञान, तथा रागादिक कषाय अने सावय यो-
गना परिहार रूप सम्यक्चारित्रमां प्रयुंजो संसार
समुद्रथी आपणा आत्मानो उद्धार करवो. यतः-

गाथाः-जीवादी सद्वहणं, सम्मत्तं तेसि मधि-
गमो णाणं; रागादी परिहणं, चरणं एसो दु-
मोक्कपहो) दश द्रष्टांते दुर्लभ, रत्न चिंतामणी
समान मनुष्य भव तयारेज सफल जाणवो. का-
रणके पंचेंद्रिओना विषय भोग तो देवादि गतिमां
मली शके छे पण परमात्मपद-मोक्षपद तो आ
मनुष्य भवमांज साधी शकाय छे. माटे आपणा

आज्ञा छे- “ मोरक पहे अप्पाणं, ववेहि तं
 चेव झाहि तं चेय, तत्येव विहर णिच्चं, मा
 विहरसु अण दव्वेसु ” हे भव्य ! तुं मोक्षमार्ग-
 मां पोताना आत्माने स्थाप, तेज परमात्मपदनुं
 ध्यान कर, तेज परमात्म पदने अनुभवगोचर कर,
 अने तेज परमात्म भावमां निरंतर विहार कर,
 अन्य द्रव्य पर्यायमां विहार करीश नहि, तेमां
 इष्टानिष्ट बुद्धि वा राग द्वेष रूप परिणाम करीश
 नहि अर्थात् सर्वदा प्रमाद तजी परमात्मपदनी
 साधनामां मग्न था.

पण हे चंद्रानन प्रभु ! आ दुःषमकालमां ते
 परमात्म पदनुं यथार्थ स्वरूप जाण्यावगर तथा तेनी
 साधनारूप जिनेश्वरनी आज्ञानी अपेक्षा तरफ लक्ष
 राख्या शिवाय अनेक प्रकारनी बाह्य क्रियाओनेज
 धर्म मानी लीधो, तेमांज रत थया, तेज करी पो-
 ताने कृतार्थ समज्या अर्थात् बाह्य निमित्तने कार्य
 मानी साचा कार्यधी विमुख थई रह्या, पण जिने-
 श्वरनी आज्ञाधी विमुखपणे वर्त्ततां सिद्धि थाय
 नहि. कारणके जिनेश्वरनी आज्ञानी अपेक्षा वगरनां
 सर्वे क्रियानुष्ठान निरर्थक छे-श्रीमद् अभयदेव सूरि

કહે છે—“ સંજમ રહિયં લિંગં, દંસણ મહં ન સંજમં
 મણિયં, આણા હીણં ધમ્મં, નિરત્થયં હોઈ સવ્વંપિ”
 તથા “ જો પૂઠ્ઠહહ દેવો, તવ્વયણં જે નરા વિરા-
 હંતિ; હારંતિ વોહિ લામં, કુદિદ્ધિ રાણ અન્નાણી”
 તથા “ પૂઆ પચ્ચરકાણં, પોસહ ઉવવાસ દાણ
 સીલાઈ; સવ્વંપિ અણુદ્ધાણં, નિરત્થયં કણય કુસુ-
 મવ્વ ” તથા શ્રી ધમ્મદાસ ગણી ઉપદેશમાલામાં
 કહે છે. “ આણાઈચ્છિય ચરણં, તમ્મંગે જ્ઞાણ કિન્ન
 મગ્ગંતિ, આણ ચ અઈવકંતો, કસસાએસા કુણઈ
 સેસં; નિશ્ચયે આજ્ઞા એજ ચારિત્ર છે અર્થાત્ જિના-
 જ્ઞાનું પાલવું એજ ચારિત્ર છે. તો જેણે જિનેશ્વરની
 આજ્ઞા માંગી તેણે શું ન માંગ્યું ? હે પ્રાણી, જો તું
 જિનેશ્વરની આજ્ઞાને ઉલંઘન કરે છે તો તું કોના
 આદેશથી ક્રિયાનુષ્ઠાન કરે છે ? તથા ઉપદેશ સિદ્ધાંત
 રત્નમાલાયામ્—“ જગગુરુ જિણસ્સ વયણં, સયલાણ
 જિયાણ હોઈ હિય કરણં; તા તસ્સ વિરાહણયા,
 કહ્ ધમ્મો કહ્ણુ જીવદયા ” જગત્ગુરુ શ્રી જિને-
 શ્વરનું વચન સર્વે જીવોને હિત કરનાર છે તો તે
 વચનને વિરાધતા કેવો ધર્મ અને કેવી જીવ
 દયા ? ॥ ૬ ॥

ગચ્છ કદાગ્રહ સાચેવેરે, માને ધર્મ પ્રસિદ્ધ;

આત્મ ગુણ અકષાયતારે ધર્મ ન જાણે
શુદ્ધરે ॥ ચંદ્રાનન૦ ॥ ૬ ॥

અર્થ:-સમ્યક્દર્શન સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્ષારિત્ર-
રૂપ શુદ્ધાત્મ ગુણનો, ક્રોધ, માન, માયા, લોભાદિક
કષાયો વડે ઘાત ન કરવો, અકષાય ભાવમાં, શુદ્ધ
પરિણામીક ભાવમાં વર્તવું તેજ સાચો ધર્મ છે.
કારણકે “ વત્થુ સહાવો ધર્મો ” એવું શ્રી જિને-
શ્વરનું પવિત્ર વચન છે-તથા તે કષાયોજ કર્મબંધના
હેતુ છે. “ જોગ નિમિત્તં ગહણં, જોગો મણ વચ્ચ
કાય સંભૂદો; ભાવ નિમિત્તો બંધો, ભાવો રદિ રાગ
દોસ મોહ જુદો ” તથા અકષાયમાં વર્તતો-પોતાના
જ્ઞાનાદિ ભાવ પ્રાણોની રક્ષા કરનારો જ્ઞાની અપ્ર-
માદી મુનિ પોતાના તથા પરના દ્રવ્યભાવ પ્રાણનો
હિંસક કેમ થાય ? અને જે અશુદ્ધ અધ્યવસાયમાં
વર્તે છે તે હિંસા નહિ કરતા હતાં પણ હિંસક છે.
યત:-“અહણંતો વિહુ હિંસો, દુટ્ઠતણુઓ મઓ
અહિમરોવ્વ, બાહિંતો નવિ હિંસો, શુદ્ધ તણુઓ
જહા વિજ્ઞો ” માટે અકષાયમાં વર્તવું તથા અ-
હિંસામાં વર્તવું એ બેની પરમાર્થે એકતાજ છે. અને

अहिंसा धर्मनुं पालन करनार सर्वे धर्मनुं पालन करनार छे, कारण के सर्वे महाव्रतो, तथा क्षमा-दिक दश धर्मो, तथा परिसह सहन, तथा तप, संयम विगोरे सर्वे धर्मो अहिंसानाज अंग छे, ते-नाज कारणो छे, माटे सर्वे धर्मोनो अहिंसामां समावेश थाय छे.

“सव्वाओवि नहओ, जह सायरंमि निवडंति; तह भगवहं अहिंसि, सव्वे धम्मा समिल्लन्ति,” तथा वली. “अहिंसा सर्व जीवानाम्, सर्वज्ञैः परि-भाषिता, इदं हि मूलं धर्मस्य, शेषस्तस्यास्ति वि-स्तरः” माटे अकषायमां वर्ततो मुनि, नवा कर्मबंधने अटकावतो, पूर्वे बांधेला कर्मनी निर्जरा करतो, जन्म मरणादि दुःखनो क्षय करी परमानंदपदने-मोक्षपदने प्राप्त करे छे. यदयुक्तं—आचारांग सूत्रे श्रीजा अध्ययने “जे क्रोधने छोडे छे ते मानने छोडे छे; जे मानने छोडे छे ते मायाने छोडे छे; जे माया ने छोडे छे ते लोभने छोडे छे; जे लोभने छोडे छे ते रागने छोडे छे; जे रागने छोडे छे ते द्वेषने छोडे छे; जे द्वेषने छोडे छे ते मोहने छोडे छे; जे मोहने छोडे छे ते गर्भथी मुक्त थाय छे; जे गर्भथी मुक्त थाय छे ते जन्मथी मुक्त थाय छे; जे जन्मथी मुक्त थाय

छे ते मरणथी मुक्त थाय छे; जे मरणथी मुक्त थाय
 छे ते नरकथी मुक्त थाय छे; जे नरकथी मुक्त थाय
 छे ते तिर्यच गतिथी मुक्त थाय छे; जे तिर्यच गति-
 थी मुक्त थाय छे ते दुःखथी मुक्त थाय छे ” एहवा
 अकषायरूप शुद्ध धर्मने नहि जाणनारा, तेनी
 अपेक्षा नहि राखनारा, एकांते बाह्य क्रियानी हठ
 धरनारा पुरुषो मात्र बाह्य क्रियानेज मोक्षनुं कारण
 मानी, पोताना गच्छ प्रमाणे वर्त्ती ते बाह्य क्रिया-
 नेज परमार्थ ठराववा प्रयत्न करे अने कहे के आहुं
 पात्र, वा आर्वी सुहृपत्ती, विगेरे राखवां अने आ-
 बीज रीते प्रतिक्रमणादि क्रिया करवी तेज मोक्षनुं
 कारण छे. अमारथी प्रकारांतरे जे उपकरणो तथा
 प्रतिक्रमणादि बाह्य क्रियाचो आदरं छे ते मोक्ष
 पामी शक्रे नहि. एम पोते आदरंल बाह्य लिंगने
 तथा बाह्य करणीने परमार्थ मोक्षनुं कारण मानी
 अमे साचो धर्म आराधीए दिये, अमारो धर्म
 प्रशंसनीय छे, एम जे पोतानी जीव्हाग्रे जल्पे छे
 अने ते माटे लांवा लांवा वितंडावादो मांडी वेसे छे,
 समतारूप अमृतने तजी कषायरूप हालाहल विष-
 ने भक्षण करे छे; एहवा एकांतवादी पुरुषोनो इरा-
 ग्रह नाश करवा माटे श्री जिनेश्वर प्रणीत शुद्धा-

गमनुं रहस्य प्रगट करता श्री म
अध्यात्मसारमां कहे छे.-“ अतो
स्तदभावे कृतार्थता; पाखंडीगण लिं
गैश्च कापिन । पाखंडी गण लिंगेषु,
रताः; न ते समयसारस्य, ज्ञातारं
भाव लिंग रतायेषु, सर्वसार विदो
वा गृहस्था वा; सिध्यन्ति धूत क
लिंगं हि मोक्षांगं, द्रव्यलिंग मकारणं;
तिकं यस्मान्नाप्येकांतिक मिष्यते । ”
दिगम्बर आचार्य श्री कुंदकुंदाचार्य सा
कहे छे-गाथा-

“ पाखंडी लिंगेषु व, गिहिलिगसुव
यारेसु; कुब्बंति जे ममत्तं, तेहि प
समयसारं-णवि एस मोरकमग्गो, प
गिहि मयाणि लिंगाणि; दंसण णाण चार
णि मोरक मग्गं जिणा बिंति ” अर्थ:-पाख

साधुलिंगमां वा गृहस्थ लिंगमां वा बहु प्रकार
लिंगमां जे ममत्व करे छे ते समय सारने जाणत
नथी. पाखंडीसाधुनो लिंग, वा गृहस्थनो लिंग
विगेर मोक्ष मार्ग नथी पण श्रीजिन्श्वर सम्यक्

दर्शन ज्ञान चारित्र्यने मोक्षनो मार्ग कहे छे—“ तह्या
जहित्तु लिंग, सागार अणगारएहि वा गहिए,
दंसणणाण चरित्ते, अप्पाणं जुज मोरकपहे ”

अर्थ:-ते माटे सागार अने अणगारना लिंगनुं
ममत्व तजी, पक्षपात तजी, दर्शन ज्ञान चारित्र्य
रूप मोक्षमार्गमां आत्माने लगाव-जोड. तेमज
वली श्री अमृतचंद्राचार्य कहे छे. “ येत्वेनं परिहृत्य
संवृति पथ, प्रस्थापि तेनात्मनाः लिंगे द्रव्यमये

वहन्ति ममतां, तत्वावबोध च्युताः । नित्योद्योत
मखंड मेक मतुला, लोकं स्वभाव प्रभा, प्राग्भारं
समयस्य सार ममलं, नाद्यापि पश्यन्ति ते ॥ ”

अर्थ:-जे पुरुषो परमार्थ स्वरूप मोक्षमार्गने छोडी
बाह्य व्यवहारमां पोताना आत्माने स्थापी द्रव्य
लिंगनी ममता धरे छे, तेनेज मोक्षनुं कारण माने
छे, ते पुरुषो तत्त्वज्ञानधी विमुख छे वली त पुरुषो
नित्यादित, अखंड, एक, अनुपम, अपराजित,
अतुल प्रकाशवंत अने पवित्र परमात्म स्वरूपने
अथवा जिनेश्वरना पवित्र समय सारने हजु सुधी
पण (सुनीनो वेष धारण कर्या छतां पण). जाणता
नथी, प्राप्त थता नथी. माटे एकांत बाह्य क्रियानो

हठ छोड़ी, परमार्थ समजी, शुद्ध साध्य तरफ लक्ष
राखी शुद्धात्म पद जेथी सिद्ध थाय एहवो प्रशस्त
व्यवहार आदरी, आपणा आत्माने अत्यंत परमा-
नंदमय परमात्मपदमां स्थित करो ॥ ६ ॥

तत्वरसिक जन थोडलारे, बहुलो जन
संवाद ॥ जाणो छो जिनराजजीरे, सघलो
एह विवादरे ॥ चंद्रानन० ॥ ७ ॥

अर्थ:-हे चंद्रानन प्रभु ! आ दुषमकालमां
अमारा भरतक्षेत्रमां सद्गुरुनी विरलता वडे
शुद्धात्म तत्त्व साधवाने रसिआ पुरुषोनी संख्या
तो रत्न मणिनी पेठे अतिशय अल्प, अने पोतानो
मत कदाग्रह स्थापन करवाने तत्पर एहवा काचना
कडका जेवा पुरुषो घणा, एवी अमारी दयामणी
दशानुं वर्णन हे जिनेश्वर ! आप सर्वथा जाणो
छो ॥ ७ ॥

नाथ चरण वंदन तणोरे, मनमां घणो
उमंग ॥ पुण्य विना किम पामीएरे, प्रभु
सेवननो रंग रे ॥ चंद्रानन० ॥ ८ ॥

अर्थ:-देवाधिदेव श्री तीर्थंकरनां चरणकमल के

જે શુદ્ધાત્મ અનુભવરૂપ સુગંધે भरपूर तथा विषय
 कषायनी चाह दाहने शमन करना, मोक्ष लक्ष्मीनुं
 अतिशय प्रिय निवासस्थान छे. तेने वंदन करवानो-
 पूजवानो भ्रमरनी पेठे तेमां लीन थवानो, माहरा
 मनमां अतिशय उमेद-उमंग छे पण आ भवचक्रमां
 भ्रमण करतां अनेकवार मनुष्यभव पाम्यो, पण वि-
 षय कषायादिकमां मोहित रही रत्नचिन्तामणी
 समान मनुष्यभव वृथा गुमावी दीयो, पुण्यानुबंधी
 पुण्यना वियोगे जिनेश्वरनी सेवामां रंग लाग्यो
 नहि. तल्लीनता थई नहि. करीयातु कडवुं छतां जेम
 मोढानी कडवासनो नाश करे छे तेम जिनेश्वरनी
 लोकोत्तर सेवारूप प्रशस्त राग, ते राग नाश कर-
 वानो तथा आत्मगुण प्राप्तिनो हेतु छे. यतः-गाथाः-

“ नाणाइसु गुणेषु, अरिहंताइसु धम्म रूवेसु
 धम्मोवगरण साहम्मीएसु धम्मथं जोय गुण-
 रागो ॥ सो सुपसत्थो रागो, धम्म संयोग
 कारणो गुण दो, पढमं कायव्वो सो, पत्त गुणे
 खवइ तं सत्वं ॥ ” भावार्थः-ज्ञानादि गुणो
 ऊपर, अरिहंतादि धर्मात्मा ऊपर, तथा धर्मना
 साधनो ऊपर, तथा साधमीं ऊपर गुणावलंबने जे

રાગ કરવો તે પ્રશસ્ત રાગ, ધર્મ સંયોગનું તથા ગુણ પ્રગટ થવાનું કારણ છે. ॥ ૮ ॥

જગતારક પ્રભુ વાંદિયેરે, મહાવિદેહ મજાર ॥
વસ્તુ ધર્મ સ્યાદ્વાદતારે, સુણિ કરિયે નિ-
રધાર રે ॥ ચંદ્રાનન૦ ॥ ૯ ॥

અર્થ:-સંસાર સમુદ્રમાંથી ઉદ્ધારવા માટે સમર્થ, મહાવિદેહમાં વિચરતા શ્રી ચંદ્રાનન પ્રભુનું નિર્મલ ભાવે વંદન કરિયે. સૂત્રમાં “વંદનનું ફલ શ્રવણ” એમ પ્રગટ વચન છે, માટે ભગવંતને વંદન કરતાં અનંત ધર્માત્મક વસ્તુનું સ્વરૂપ સ્યાદ્વાદનયે સાંભળવાનો લાભ મળે, તે સાંભળી વસ્તુ સ્વરૂપનો નિર્ધાર કરી શુદ્ધ ધર્મમાં પ્રવૃત્ત થઈયે. ॥ ૯ ॥

તુજ કરુણા સહુ ઊપેરે રે, સરસ્વી છે મહા-
રાય ॥ પળ અવિરાધક જીવનેરે, કારણ
સફલુ થાયરે ॥ ચંદ્રાનન૦ ॥ ૧૦ ॥

અર્થ:-હે ચંદ્રાનન પ્રભુ ! આપ રાગ રૂપી સમુદ્ર ને ઊલંઘી ગયા છો, વીતરાગ ભૂમિમાં વિરાજમાન છો તેથી આપ તો શત્રુમાં તેમજ મિત્રમાં, સેવકમાં તેમજ અસેવકમાં, નિંદકમાં તેમજ સ્તુતિકારમાં

समान वृत्तिवाला छो, सर्वे जीवो ऊपर आपनी
 करुणा तो हीणाधिकता रहित एक सरस्वी छे,
 संसार समुद्रथी तारवा माटे सर्वेने एक सरस्वी
 उपदेश आपो छो. तो जे जीवो आपनी आज्ञाना
 विराधक होय ते न तरी शके ते तेमनोज दोष छे.
 “पत्रं नैव यदा करीर विटपे, दोषो वसंतस्य
 किम; ने लूकोप्यवलोकते, यदि दिवा सूर्य-
 स्य किं दूषणं” पण आपनी आज्ञाना आराधक
 जीवो आ संसार समुद्रथी तरी शके, आपनुं निमित्त
 तेओनेज सफल थाय, ॥ १० ॥

एहवा पण भवि जीवनेरे, देव भक्ति आ-
 धार ॥ प्रभु समरणथी पामीएरे, देवचंद्र
 पद सारेरे ॥ चंद्रानन० ॥ ११ ॥

अर्थ:-एहवा आराधक भव्य जीवोने पण देवा-
 धिदेव हे चंद्रानन प्रभु ! आपनी भक्तिनोज आधार
 छे, संसार समुद्रमांथी तरवामां प्रवहण समान
 पुष्ट अवलंबन छे. माटे हे प्रभु ! देवमां चंद्रमा
 समान सर्वोत्कृष्ट परमात्मपद, आपना गुणनुं स्मरण
 तथा ध्यान करवाथी प्राप्त थशे ॥ ११ ॥ संपूर्ण ॥

॥ અથ ત્રયોદશમ ચંદ્રબાહુ જિન સ્તવનમ્ ॥

॥ શ્રી ચરનાથ ઉપાસના ॥ એ રાગ ॥

॥ ચંદ્રબાહુ જિન સેવના, ભવ નાશિની તેહ ॥

પર પરિણતિના પાસને, નિષ્કાસન રેહ ॥

ચંદ્ર૦ ॥ ૧ ॥

અર્થ:-અજ્ઞાનાદિ અષ્ટાદશ દૂષણ રહિત તથા અનંત ચતુષ્ટય સહિત તથા શુદ્ધ નયે આત્મધર્મનો ઉપદેશ આપી ભવ્ય સમૂહને મોક્ષમાર્ગે દોરનાર, વિદેહ ક્ષેત્રમાં વિહરમાન શ્રી ચંદ્રબાહુ જિનેશ્વરની શુદ્ધ ભાવે (આલોક પરલોક સંબંધી વિષય ભોગની આકાંક્ષા રહિત શુદ્ધાત્મ ભાવ પ્રગટ કરવાના હેતુ-રૂપ) કરેલી સેવા. સૂર્ય જેમ અધિકારનો શીઘ્રમેવ નાશ કરે છે તેમ લીલા માત્રમાં ભવ અમણનો નાશ કરનાર છે તથા “ પર પરિણતિના પાસને નિષ્કાસન રેહ ” જેમ હરણ શબ્દના વિષયમાં મોહિત થઈ વિવિધ પ્રકારના વાર્જીત્રના મધુર કોમલ સ્વરના રાગ વશે પારધીયે નાંચેલી જાલમાં આવી ફસે છે, પોતાની સ્વતંત્રતાને ગુમાવી પરાધીન થઈ જીવ જોલમમાં આવી પડે છે. તેમજ સંસારી પ્રાણીઓ

શબ્દાદિક વિષયના રાગ વશે મોહ પહ્લીપતિએ પાથ-
 રેલી અતિશય વિસ્તીર્ણ અને દૃઢ કર્મજાલમાં આવી
 ફસે છે, પોતાના સહજ સ્વતંત્ર અવ્યાબાધ આત્મ
 ભોગને ગુમાવી બેસે છે, પરાધીન દીન થાય છે, પો-
 તાના શુદ્ધ જ્ઞાનાદિક પ્રાણના જોશ્વમમાં આવી પડે
 છે, કષાયાગ્નિમાં (દગ્ધમાન) પચ્યમાન થાય છે,
 ચલતા રહે છે, એહવા પર પરિણતિના રાગરૂપ બં-
 ધનને છેદવા માટે ચંદ્રબાહુ જિનેશ્વરની સેવના તી-
 ર્ણધારા સમાન છે, તેથી મુક્ત કરવા અત્યંત સા-
 મર્થ્યવંત છે ॥ ૧ ॥

પુદ્ગલ ભાવ આશંસના, ઉદ્ઘાસન કેતુ ॥

સમ્યક્દર્શન વાસના, ભાસન ચરણ સમેત ॥

ચંદ્ર ૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ:-અનાદિકાલથી કર્મ જાલમાં ફસેલો
 પરાધીન થયેલો આત્મભોગના જ્ઞાન તથા આસ્વા-
 દનનો વિયોગી પુદ્ગલના રૂપ રસ ગંધ સ્પર્શાદિ
 વિષયભોગમાં મગ્ન થયેલો સંસારીજીવ નિરંતર પુદ્-
 ગલ વિષયોની આશંસના-તૃષ્ણાને વશ થતો છે,
 તે તૃષ્ણાને છેદવાને ચંદ્રબાહુ પ્રભુની સેવા કેતુ સ-
 માન છે તથા સમ્યક્દર્શન, સમ્યક્જ્ઞાન, સમ્યક્

चारित्र्यरूप आत्मस्वभावमां वास कराववावाली
छे, आत्मगुणनी सुवासमां संनुष्ट करनार छे ॥ २ ॥

त्रिकरण योग प्रशंसना, गुणस्तवना रंग ॥
वंदन पूजन भावना, निज पावना अंग ॥
चंद्र० ॥ ३ ॥

अर्थ:-मन वचन अने काया ए त्रियोगनी शु-
द्धि (कषायादि अप्रशस्त परिणाम रहित) देवाधि-
देव श्री तीर्थंकर भगवंतनो यशवाद बोलवो, तेमना
ज्ञानादिक पवित्र गुणनी स्तवना करवी, गुणानुराग
करवो, वंदन पूजन विगोरे करवुं. तेमना ज्ञानादि
शुद्धभाव अनुगत आपणो आत्म परिणाम करवो,
ते सर्वे आपणा आत्माने ज्ञानावरणादि पापथी मुक्त,
पवित्र करवाना तथा शुद्धात्मपद प्राप्तिनां अंग छे । ३।

परमात्मपद कामना, काम नाशन तेह ॥
सत्ता धर्म प्रकाशना, करवा गुण गेह ॥
चंद्र० ॥ ४ ॥

अर्थ:-केवलज्ञान, केवलदर्शनादि, अनंत गुण-
पिंड आपणा शुद्धात्मपदनी कामना, ते साधवानी
रुचि, ते पुद्गलादि अन्य द्रव्यनी कामना तृष्णाने

નાશ કરવાનો હેતુ છે, કારણકે આપણો આત્માજ પરમાત્મપદનું ઉપાદાન છે, તેજ પરમાત્મ ભાવે પરિણમનાર છે માટે પરમાત્મપદ ક્ષેત્રાંતરે નથી અને ક્ષેત્રાંતરે રહેલી વસ્તુની કામનાજ દુઃખદાયી છે માટે પરમાત્મ પદની કામના થવાથી અન્ય સર્વ કામનાનો ઉચ્છેદ થાય છે. તે પરમાત્મપદની કામનાના હેતુ શ્રી જિનેશ્વર ભગવંત ઈ, તેથી તેમની સેવા સત્તામાં રહેલી જ્ઞાનાદિ અનંત લક્ષ્મીને પ્રગટ દ્રષ્ટીગોચર કરવાને તથા આપણા આત્માને ગુણ-નિધાન પૂજ્ય પદ આપવાને પુષ્ટ હેતુ છે. ॥ ૪ ॥

॥ પરમેશ્વર આલંબના, રાચ્યા જેહ જીવ ॥
 નિર્મલ સાધ્યની સાધના, સાધે તેહ સદીવ ॥
 ચંદ્ર૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ:-જગત્ ચૂડામણિ તરણ તારણ પરમેશ્વરનો આશ્રય જે ભવ્ય જીવો રૂચિ વહુમાન પૂર્વક ગ્રહણ કર્યો છે તેજ પુરુષો નિરંતર પોતાના શુદ્ધ સાધ્યને સાધવાવાલા છે. પરમાત્મપદ જેમાં પ્રગટપણે છે એવા તીર્થંકર ભગવંત પરમાત્મપદ સાધનાના પુષ્ટ હેતુ થઈ શકે પણ અન્ય કુદેવાદિક જે પો અશુદ્ધ

आत्मभावमां चर्ते छे ते मोक्षना हेतु केम यनी
शके ? ॥ ५ ॥

॥ परमानंद उपायवा, प्रभु पुष्ट उपाय ॥
तुजसम तारक सेवतां, पर सेवन थाय ॥
चंद्र० ॥ ६ ॥

अर्थ:-ते कारणमाटे हे चंद्रबाहु प्रभु परमानंद
पद-मोक्षपद प्राप्त काचामां आपज पुष्ट उपाय छो.

“ पुष्ट हेतु जिनेंद्रोयं, मोक्ष सद्भाव साधने ”

हे प्रभु ! आप जेवा पूज्य पुरुषनी सेवा करतां
अन्य जीव तथा पुद्गलनी आशा तृष्णा तथा सेवा
मटी जाय, करवी न पडे ॥ ६ ॥

॥ शुद्धातम संपत्ति तणा, तुम्हे कारण सार ॥
देवचंद्रं अरिहंतनी, सेवा सुखकार ॥
चंद्र० ॥ ७ ॥

अर्थ:-अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख तथा
अनंतवीर्यरूप परमपवित्र, अविनश्वर अने स्वाधीन
अखूट लक्ष्मी प्रगट-प्राप्त करवाना, हे भगवंत !
आपज साचा कारण छो. कारण के ते केवल ज्ञा-

नादि लक्ष्मीने आप संपूर्ण प्रगट स्वाधीन करी नि-
 रंतर भोगवो छो, तज्जन्य परमानंदमां मग्न छो.
 एवं आपनुं स्वरूप द्रष्टि गोचर यतां मने पण एवं
 भान थयुं के ए अनुपम विभूतिना ईश्वर माहरी
 स्वजाति छे, तेथी हुं पण आप समान लक्ष्मीनो
 स्वामी थवाने सत्तावंत छुं, एम भासन यतां आप
 समान परमात्मपद साधवानी मने रुचि थइ तेथी
 आप माहरी सिद्धिना साचा कारण छो. जो आ-
 पना परमानंदमय स्वरूपनुं मने दर्शन न थयुं होत
 तो मने परमात्म पद साधवानी रुचि पण थती नहि
 अने रुची थयाविना कार्य साधनामां उद्यम प्रवृत्ति
 थाय नहि अने साधना विना कार्य सिद्धि पण थाय
 नहि माटे न्यायद्रष्टि ए जोतां आपनुं सिद्धपद माहरी
 सिद्धिनुं कारण प्रतित थाय छे ॥ उक्तंच विशेषा-
 वश्यके ॥ “ सर्वेपि बुद्धो संकल्प्य कार्यं करोति
 इति ॥ व्यवहारस्ततो बुद्ध्याद्धयवसितस्य कुं-
 भस्य चिकीर्षितो मृन्मयःकुंभस्तह्बुद्ध्यालंबन
 तथा कारणं भवति ” तथा वली ते परमात्म-
 पद साधवानो यथार्थ मार्ग बतावनार पण आपज
 छो तेथी पण आप माहरी सिद्धिना कारण छो माटे

કષાય જન્ય થવ સમુદ્રથી મુક્ત થવા, બહુ સન્માન સહિત સેવે છે. જે ભગવંતના દરેક પ્રદેશે રહેલા જ્ઞાનાદિ અનંત ગુણો સંપૂર્ણ પળે નિર્મલ પ્રગટ થયા છે, તે ગુણનો વ્યાઘાત કરનાર જ્ઞાનાવરણાદિ ધાતી કર્મનો સત્તા સહિત નાશ કર્યો છે અને તેથી જ્ઞાનાદિ આત્મ ગુણની સહજ, અકૃત્રિમ, સ્વાધીન, અને અવિનશ્વર અનંત અનુભૂતિ (લક્ષ્મી) પ્રગટ પ્રાપ્ત થઈ છે, નિરંતર તેના સ્વામી તથા ભોક્તાપણે વર્તે છે-પરમાનંદમાં નિમગ્ન છે ॥ ૧ ॥

સામાન્ય સ્વભાવની હો, કે પરિણતિ અસહાયી । ધર્મ વિશેષની હો, કે ગુણને અનુજાયી ॥ ગુણ સકલ પ્રદેશે હો, કે નિજ નિજ કાર્ય કરે । સમુદાય પ્રવર્તે હો, કે કર્તાભાવ ધરે ॥ ૨ ॥

અર્થ:-સામાન્ય સ્વભાવ વિના વસ્તુની છતી નહિ અને વિશેષ સ્વભાવ વિના કાર્ય નહિ, પર્યાય પ્રવૃત્તિ નહિ, માટે પંચાસ્તિકાચ તે સદા સામાન્ય વિશેષ સ્વભાવમયી છે.

જે સ્વભાવમાં એકપણું, નિત્યપણું, નિરવયવ-પણું, અક્રિયપણું, અને સર્વગતપણું હોય તે સામાન્ય

पंचास्तिकायसां अनंत विशेष स्वभाव छे.

बली हे भगवंत ! आप स्वतंत्रपणे पोताना ज्ञानादिक कार्यना हमेशां कर्त्ता छो माटे आप परमेश्वर छो कारणके जीव द्रव्य शिवाय अन्य कोई पण द्रव्यसां कर्त्तापणुं नथी (कर्त्तृत्वं जीवस्य ना न्येषाम्) कारण के “गुण सकल प्रदेशो हो के निज निज कार्य करे, समुदाय प्रवर्त्त हो के कर्त्ता भाव धरे” आपना सकल प्रदेशो रहेला अनंत गुणो पोत पोतानुं कार्य करेछे पण ते सर्वे प्रदेशो समुदाय मलीने एकठो प्रवृत्ति करेछे माटे आप स्वतंत्र कर्त्ता छो ॥ २ ॥

जड द्रव्य चतुष्के हो के कर्त्ता भाव नहि, ॥
 सर्व प्रदेशो हो, के वृत्ति विभिन्न कही ॥
 चेतन द्रव्यने हो, के सकल प्रदेश मीले ॥
 गुणवर्त्तना वर्त्त हो, के वस्तुने सहज बले ॥ ३ ॥

अर्थ:-पण हे भगवंत ! जडद्रव्य चतुष्कसां कर्त्ता भाव ठरी शक्तो नथी, कारणके जो के ते जड द्रव्यना धर्म प्रदेशो प्रदेशो वर्त्त छे परंतु सर्वे

अर्थ:-एम दरेक सर्वे प्रदेशना गुणाधिभागो एकत्र एक बीजाने सहकारीपणे सदा परिणमे, वली द्रव्य क्षेत्र कालनी प्रवृत्ति ते द्रव्यना परम-भावेने अनुसारे वर्त्ते छे, जेम जीव द्रव्यनो भाव चैतन्यता छे माटे चैतन्य गुण पर्यायनो एक पिंड ते जीव द्रव्य छे, अने चैतन्य गुणने रहेवानुं असंख्यात प्रदेशमय स्थानक ते जीव द्रव्यनुं क्षेत्र छे अने चैतन्य गुण पर्यायनी प्रवृत्ति ते जीव द्रव्यनो काल छे यद्युक्तं-“ गुण समुदाओ दव्वं, खित्तं ओगाह वट्टणा कालो ॥ गुण पज्जाय पवत्ति, भावो नियवत्थु धम्मो सो ॥ ” दान लाभ भोगादि लब्धीओ ते वीर्य गुणनी सहाय विना वर्त्ती शके नहीं पण हे भगवंत ! आपनुं वीर्य क्षायिकपणे होवाथी गुण वृत्तिना समूहने अकंपणो सहकारी थई शके छे तेथी आप हमेशां अवंध तथा परमोत्कृष्ट अवस्थामां वर्त्ती छो, कारण के चलइ स फंदई ” ॥ ४ ॥

॥ पर्याय अनन्ता हो, के जे एक कार्यपणे ॥
वरते तेहने हो, के जिनवर गुण पमणे ॥

ज्ञानादिक गुणनी हो, के वर्त्तना जीव प्रते ॥

धर्मादिक द्रव्यने हो, के सहकारे करते ॥५॥

अर्थः—त्रिलोक पूज्य श्री जिनेश्वर देव एम कहे छे के एक कार्य पणे परिणमनारा अनंता छती पर्यायनो समुदाय ते गुण छे. जेम जाणवारूप सामर्थ्य छे जेमां एवा अविभागी पर्यायनो समुदाय ते ज्ञान गुण, देखवारूप सामर्थ्य छे जेमां एवा अविभाग पर्यायनो समुदाय ते दर्शन गुण, परिणामालंबन रूप कार्य सामर्थ्य छे जेमां एवा अविभागी पर्यायनो समुदाय ते वीर्यगुण, विगेरे एम दरेक द्रव्यना प्रति प्रदेशे पोतपोतानु एक कार्य करवानु सामर्थ्य धरनारा अनंता अविभागरूप पर्यायनो समुदाय ते गुण छे. जीवद्रव्यना दरेक प्रदेशे जाणवा रूप कार्य करवानु सामर्थ्य धरनारा अनंता अविभाग पर्याय छे तेनो समुदाय ते ज्ञान गुण. एम ज्ञानादि अनंत गुणनी वर्त्तना जीव द्रव्यमां छे. यद्युक्तं—नय चक्र सारे—“ तत्रैकस्मिन् द्रव्ये प्रति प्रदेशे स्व स्व एक कार्य करण सामर्थ्य रूपा अनंता अविभाग रूप पर्याया स्तेषां समुदायो गुणः भिन्न कार्य क-

रणे सामर्थ्यरूपा भिन्न गुणस्य पर्यायाः एवं
 गुणा अप्यनन्ताः प्रतिगुणं प्रतिदेशं पर्याया
 आविभाग रूपाः अनन्ता स्तुल्याः प्रायीइति ते
 चास्ति रूपाः प्रति वस्तुनि अनन्ता स्ततोऽनन्त
 गुणाः सामर्थ्य पर्यायाः ” अने धर्मादिक जड
 द्रव्यमां ज्ञान गुणधी अतिरिक्त चलनसहकारादि
 गुणो वर्त्ते छे ॥ ५ ॥

ग्राहक व्यापकता हो, के प्रभु तुम धर्म
 रमी ॥ आतम अनुभवथी हो, के परिणति
 अन्य वमी ॥ तुज शक्ति अनती हो, के
 गातांने ध्यातां ॥ मुज शक्ति विकासन हो,
 के थाये गुण रमतां । ६ ॥

अर्थ:-हे प्रभु ! भेदविज्ञाननी पूर्णता चडे आप
 निरंतर ज्ञानादिक शुद्धात्म गुणना ग्राहक छो. तेथी
 अतिरिक्त विषय कषायने ग्रहण करवाथी आप
 मुक्त थया छो, तेमज आपनी व्यापकता पण ज्ञाना-
 दिक शुद्धात्म गुणमांज निरंतर व्यापे छे पण विषय
 कषायमां कदापि काले व्यापे नहि तेथी आप सदा

परमावर्था अन्त्यास्र क्षो तथा निम्न शाश्वत स्वाधीन
 अने एकांतिक सहज सुख पिंड शुद्धात्म द्रव्यना
 अनुभूतिना निरंतर आस्वाद लेनारा तथा तैमांज
 विलासी यइ पौद्गलीक विभूतानुं कर्मापणुं भोक्ता-
 पणुं तथा रमणपणुं चमनना पेदे सर्वथा प्रकारे तर्जा
 दीधुं कारणके शुद्धात्म अनुभवरूप अनृतपानमां
 मग्न पुरुष, पौद्गलीक विषय कपायरूप द्वालाहल
 विषय पोवाने केम इच्छे ? हे मनु ! “ अजडत्वा-
 रिमका चितिशक्तिः; अनाकारोपयोगमयी दृशि-
 शक्तिः; साकारोपयोगमयी ज्ञानशक्तिः, अन^१.
 कुलत्व लक्षणा सुखशक्तिः, स्वरूप निर्वर्तन
 सामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः, अखण्डित प्रताप
 स्वातंत्र्य शालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः, क्रमा-
 क्रमवृत्ति वृत्तलक्षणात्पादं व्यय ध्रुवत्वशक्तिः”
 तथा कर्तृत्वशक्ति, भोक्तृत्वशक्ति, परिणामशक्ति,
 स्वधर्म ग्राहकत्वशक्ति, स्वधर्म व्यापकत्वशक्ति,
 तत्त्वशक्ति, एकत्वशक्ति, अनेकत्वशक्ति, कारण-
 शक्ति, संप्रदानशक्ति, अपादानशक्ति, अधि-
 करणशक्ति, संबंधशक्ति, ए आदि अनंतशक्ति
 आपमां, समवाय संबंधे रहेली छे ते शक्तिओतुं

स्मरण तथा ध्यान करता तथा शुद्धात्मगुणमां रक्षण
करनां सत्तागते रहेली आप समान माहरी सर्वे
शक्तिओ प्रगट् थाय, सहज शिवलक्ष्मीनी प्राप्ति
थाय ॥ ६ ॥

इम निजगुण भोगी हो, के स्वामी भुजंग
मुदा ॥ जे नित वंदे हो, के ते नर धन्य
सदा ॥ देवचंद्र प्रभुनी हो, के पुण्येभक्ति
सधे ॥ आत्म अनुभवनी हो, के नित नित
शक्ति वधे ॥ ७ ॥

अर्थ:- एम शुद्धात्म गुण पर्यायने निरंतर भो-
गवनारा परमानंद समूह हे श्री भुजंग स्वामी !
पवित्र भाव वडे जे आपनुं नित्यवदन स्मरणादि
करे छे तेज पुरुषो आ जगत्त्रयमां धन्य छे ! तेज
पुरुषो स्तुति पात्र छे, तेज पुरुषो कृतार्थ छे, हे
देवाधिदेव ! आपनी भक्ति महत्पुण्यना योगेज
साधी शकाय छे वली आपनीज भक्तिना पसाये
बीजना चंद्रमानी पेठे आत्म अनुभवनी शक्ति

દિન પ્રતિદિન વૃદ્ધિગત થાય, આશ્વરે પૂર્ણાનંદની પ્રાપ્તિ થાય ॥ ૭ ॥

॥ સંપૂર્ણ ॥

॥ અથ પંચદશમ શ્રી ઈશ્વરદેવ જિન સ્તવનમ્ ॥

॥ કાલ અનંતાનંત એ દેશી ॥

સેવો ઈશ્વર દેવ, જિણે ઈશ્વરતા હો, નિજ અદ્ભુત વરી; તીરોભાવની શક્તિ, આવી-ભાવે હો, સહુ પ્રગટ કરી ॥ ૧ ॥

અર્થ:-મહાવિદેહમાં વિહરમાન હે શ્રી ઈશ્વર-દેવ ! આપે સર્વ જગત્ ત્રયને આશ્ચર્ય તથા પરમાનંદ પમાડે એવી ઈશ્વરતા પ્રગટ-સંપ્રાપ્ત કરી છે. તે ઈશ્વરતા કેવી છે-પોતાના શુદ્ધ ગુણ પર્યાયેમાં વરતે છે તેથી પૂર્ણ પવિત્ર સ્વાધીન તથા અવિનશ્વર છે. પરદ્રવ્યના રાગથી રહિત હોવાથી રાગ દ્વેષ ભય તથા કામનાથી રહિત છે માટે અત્યંત સુખ સમૂહ રૂપ છે. પરમાનંદમય છે.

અનાદિ વિભાવને લીધે આત્મા રાગ દ્વેષ રૂપ અશુદ્ધ ભાવે પરિણમી જ્ઞાનાવરણાદિ અનૈક પ્રકારના કર્મ બંધન વડે પોતાની જ્ઞાનાદિ અનંત વિશેષ

शक्तिआने आच्छादित करे छे, पोताना स्वाभाविक परमानंदथी विमुख रहे छे पण हे परमेश्वर ! आपे पोताना आत्मानुं तथा पुद्गलादि परद्रव्यनुं स्वरूप यथार्थ ओलखी पोताना स्वरूपने सुखनिधान जाणी तेना रसिया थई सम्यक्पराक्रम आदरी परकर्तृता, परभोक्तृता, परग्राहकता, परव्यापकता, पररमणता विगेरे अनंत विभावनी परित्याग करी, शुक्लध्याननी तीव्र अग्नि बडे ज्ञानावरणादिकर्ममलने भस्मीभूत करी, शुद्ध सुवर्ण समान परम प्रकाशमान अनंत परमानंदमय पोतानी ज्ञानादि सर्व शक्तिओ "आवीर्भावे प्रगट करी" प्रगट, निरावरण स्वकार्य प्रयुक्त करी राग द्वेष मोह विगेरे नाश करी, सर्व दूषण रहित स्वसत्तामां विराजमान रहि पोताना ज्ञानादि शुद्ध अनंत गुणोनी ईश्वरता निष्कंटकपणे भोगवो छो. तेथी हे परमेश्वर ! आपमां साची ईश्वरता जाई परमाह्लादित थई पवित्र विनय युक्त आपनी द्रव्यभावथी सेवा करीए. द्रव्यभावसेवानुं स्वरूप-
 "द्रव्यसेव वंदन नमनादिक, अर्चन वली गुण ग्रामोजी । भाव अभेद थवानी ईहा, परभावे निःकामीजी " ॥

अर्थ:-सर्व परभावनी कामना रहित जिने-
श्वरना पवित्र गुणोमां बहुत सन्मान धरी ते समान
पवित्र गुणो प्रगट करी आरिहंत समान पोतानुं
परमात्म पद साधवुं ते भावसेवा छे. तथा ते
भावसेवाना कारणरूप, भावसेवाने प्रशस्त, परम-
पूज्य श्री जिनेश्वरना पवित्र गुणोनुं स्मरण तथा
गान करवुं तथा ते जिनेश्वरनी परम पवित्र ज्ञान
मूर्तिने वंदनं नमनादि करवुं ते द्रव्यसेवा छे ॥ १ ॥

अस्तित्वादिक धर्म, निरमल भाव हो सहुने
सर्वदा ॥ नित्यत्वादि स्वभाव, ते परिणामी
हो जड चेतन सदा ॥ २ ॥

अर्थ:-अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व,
अगुणत्व तथा सत्त्व ए छे मूल सामान्यस्वभाव
सर्वे द्रव्यमां सदाकाल निरावरणपणे ते छे तथा
सर्वे जड तथा चेतन द्रव्यां नित्यत्वादि स्वभावे
निरंतर परिणमे छे. भाटे ए सामान्यस्वभावनी
निरावरणता वडे तथा साधारणधर्मना परिणाम
वडे तो हे ईश्वरदेव ? आपने परमेश्वरपणानी पदवी
प्राप्त थई शके नहि पण ॥ २ ॥

कर्ता भोक्ता भाव, कारक ग्राहक हो ज्ञान

મેં ભોગવ્યા, હું ભોગવું હું, હું ભોગવીશ, એમ પર-
 ભાવના મોક્તાપણાનું અભિમાન કરે છે. પણ જ્યારે
 સમ્યક્જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થાય ત્યારે પોતાના જ્ઞાનાદિ
 શુદ્ધ ગુણ પર્યાયને પોતાના ભોગ ઉપભોગ જાણી તે
 ભોગવવાનો કાર્મી થઈ તેના ભોગમાં મગ્ન થાય,
 પરભાવનું મોક્તાપણું દૂર થાય. તેમજ અનાદિ
 વિભાવ વશે અશુદ્ધ કારક પ્રવૃત્તિમાં પોતાના આત્મ
 પરિણામ ને ધિર કરે છે, તેમજ પરભાવમાં વ્યાપક
 અર્થાત્ તલ્લાન-તદગત થઈ રહે છે, તેમજ અશુદ્ધ
 જ્ઞાને પરિણમે છે અર્થાત્ દેહને આત્મતત્ત્વ જાણે છે,
 પૌદ્ગલીક ભોગને આત્મ ભોગ જાણે છે, પૌદ્ગલીક
 વિષય સુખમાં સુખ જાણે છે, શારીરિક વીર્યને
 આત્મવીર્ય જાણે છે. તેમજ પૌદ્ગલીક પરિણામમાં

નયે પોતાની જ્ઞાનાદિ નિષ્કલંક, અવિનશ્વર લક્ષ્મી-
ના સ્વામી-ઈશ્વર થયા છો માટે આપજ સાચા
ઈશ્વર છો. ॥ ૩ ॥

પૂર્ણાનંદ સ્વરૂપ, ભોગી અયોગી હો ઉપયોગી
સદા ॥ શક્તિ સકલ સ્વાધીન, વરતે પ્રભુની
હો જે ન ચલે કદા ॥ ૪ ॥

અર્થ:-વલી છે ભગવંત ! આપ પૂર્ણાનંદ સ્વરૂપ
છો. જગત્વાસી જીવો ધન સ્ત્રી આદિ ઈષ્ટ પદાર્થોની
અધિકતર પ્રાપ્તિ વડે પોતાને પૂર્ણાનંદ માને છે; પણ
તે સમુદ્રના કલ્લોલની પેઠે અવાસ્તવિક છે; ક્ષણ-
ભંગૂર છે, તૃષ્ણા રૂપી આગને વધારનાર છે, તથા
સ્વાભાવિક સંપદાનો ઘાત કરનાર છે. પણ આપની
જ્ઞાનાદિક સંપદા તે આપથી પ્રદેશાંતરે નથી તેથી
તે દૂર થવાનો કદાપિ ભય નથી, વલી એક ક્ષેત્રા-
વગાહી હોવાથી ચાહ દાહથી અતીત છે, વલી તે
જ્ઞાનાદિ સંપદા સહજ સ્વાભાવિક છે માટે તે
રાખવાનો અથવા મેલવવાનો પ્રયાસ કરવો પડે
તેમ નથી, વલી તે આપને સહજ સંવંધે છે તથા
પરદ્રવ્યથી અગ્રાહ્ય છે માટે તેને કોઈ ભાંગી લૂંટી

शक तेम नथी तेथी हे भगवंत ! आपज पूर्णानंद
छो. यद्युक्तं—

श्लोकः—“ पूर्णता या परोपाधेः सा याचितक
मंडनं । या तु स्वाभाविकी सैव जात्यरत्न-
विभानिभा ॥ अवास्तवी विकल्पैः स्यात्
पूर्णताब्धे रिवोर्मिभिः ॥ पूर्णानंदस्तु भग-
वांस्तिमितोदधिसन्निभः ॥ ”

तथा हे भगवंत ! आप स्वरूप भोगी छो; मात्र
ज्ञानदर्शन चारित्रादि पोताना शुद्ध निरुपाधिक
गुण पर्यायने भोगववा वाला छो तेथी आप सदा
ष्कंटक छो, तथा हे भगवंत ! आप मन वच
तथा कायानी क्रियाना अकर्ता थया छो, योगनुं
ममत्व सर्वदा दूर कीधुं छे तेथी आप अयोगी छो,
वली आप सदा उपयोगी छो, ज्ञानोपयोगनो घात
करनार ज्ञानावरणीय कर्म तथा दर्शनोपयोगनो
घात करनार दर्शनावरणीय कर्म ए वनेनो आपे
सत्ता सहित सर्वथा नाश कर्यो छे माटे हवे आपना
उपयोगने कोइ पण स्वलना पमाडनार नथी तेथी
आप सदा उपयोगी छो, सर्वे समय शुद्ध ज्ञान-
दर्शनोपयोगमां निरंतर वर्त्तो छो; एम हे भगवंत

ज्ञानादि सर्वे शक्तिउं आप पोताने स्वाधीन वर्त्तावो
 छो वली सर्वे कर्मनो अभाव करी आपे ते शक्तिउं
 पोताने स्वाधीन करी छे माटे ते हवे आपथी कोइ
 पण काले क्षणमात्र पण प्रदेशांतरे थनार नथी, सदा
 काल आपमां अचल पणे रहेशे तेथी तज्जन्य आनंद-
 मां आप सदा मग्न छो ॥ ४ ॥

दास विभाव अनंत, नासे प्रभुजी हो तुज
 अवलंबने ॥ ज्ञानानंद महंत, तुज सेवार्थी
 हो सेवकने बने ॥ ५ ॥

अर्थ:-ज्यांसुधी आत्मा सचेत थयो नथी
 त्यांसुधी अनादि विभाव स्वभाव होवाने लीधे
 आत्मा सम्यक्ज्ञाने नहि परिणमतां अज्ञानपणे
 परिणमे छे, सम्यक्दर्शनपणे नहि परिणमतां
 मिथ्यादर्शनपणे परिणमे छे, स्वस्वरूपमां रमण
 नहि करतां विषय कषायमां रमण करे छे पंडित-
 भावे वीर्य नहि फोरवतां बाल बाधक भावे फोरवे
 छे, सूक्ष्म तथा स्थूल क्रियानो रागी अई कर्म बंधन
 करे छे शुद्ध स्वभावनो कर्त्ता नहि बनतां परभावनो
 कर्त्ता बने छे, शुद्ध स्वभावनो भोक्ता नहि बनतां
 परभावनो भोक्ता बने छे, शुद्ध ज्ञानादि गुणको

ग्राहक नहि थनां परगुण पर्यापनो ग्राहक थाय छे,
 शुद्ध स्वभावमां नहि व्यापतां परभावमां व्यापे छे,
 एम ज्ञानादि अनंत गुणोने अशुद्धपणे परिणमाववा-
 रूप जे अनंत विभाव हूं सेवकने बलगेलां छे ते
 संच विभाव हे परमेश्वर ! आपना अवलंबनवहे
 समूल नाश थशे. बली हे परमेश्वर ? आपनी पवित्र
 आज्ञामां विचरवारूप साची सेवाथी हूं सेवकने
 अखूट अचल अचिनश्चर ज्ञानानंद प्राप्त थशे.
 ज्ञानानंद तेज साचो आनंद छे. विषय कृपाय वहे
 मनायेलो आनंद ते अवास्तिंविक कल्पित तथा
 दुःख निदान छे ॥ ५ ॥

॥ धन्य ! धन्य ! ते जीव, प्रभु पद वंदी
 हो जे देशन सुणे ॥ ज्ञान क्रिया करे शुद्ध
 अनुभव योगे हो निज साधकपणे ॥ ६ ॥

अर्थ: धन्य छे ते जीवोने ? धन्य छे ते जी-
 वोने ? कं जे हे परमेश्वर ! आपना पवित्र चरण-
 कमलने वंदी मर्वे जीने सुखकारी संसार समुद्र-
 मांथी तारनार धर्मदेशना रचि पूर्वक अवण करे
 महत्पुण्यना योगे आप श्रीनां दिव्यवर्णीनो लाभ
 मले छे. रत्नचिंतामणी श्री अत्यंत दुःप्राप्य असूत्य

આપનાં દેશનાનો યથાર્થ રહસ્ય પામી પોતાના
શુદ્ધાત્મ પદના સાધકપણે શુદ્ધાત્મ અનુભવ યોગે
જ્ઞાનશુદ્ધિ તથા ક્રિયાશુદ્ધિ આદરે “જ્ઞાનશુદ્ધિ”—

સંશય વિશ્રમ અને વિમોહ રહિત શુદ્ધ તત્ત્વનું જાણવું
તે શુદ્ધજ્ઞાન છે. તે શુદ્ધજ્ઞાન સર્વ દોષથી રહિત
કેવલજ્ઞાનદિવાકર શ્રી અરિહંતાદિનામ્નુપદેશદ્વારા
તથા તેંડનાં પ્રરુપેલા સદાગમદ્વારા વાચના, પ્રિચ્છના,
પર્યટના, અનુપેક્ષા તથા ધર્મકથા વિગેરે સાચા
નિમિત્તથી શુદ્ધજ્ઞાનના પ્રાપ્તિ થાય છે માટે તેંડનું
અતિવાર રહિત નિરંતર સેવન કરવું જેથી જ્ઞાનશુદ્ધિ
થાય. “ક્રિયાશુદ્ધિ”—ક્રિયા બે પ્રકારે છે. બાહ્ય-

ક્રિયા અને અંતરંગ ક્રિયા—શુદ્ધા હારાદિકનું ગ્રહણ
કરવું તથા તથા ઇર્ષ્યા ભાષાદિ સમિતિનું પાલન
કરવું વિગેરે બાહ્યક્રિયાશુદ્ધિ છે. તથા સ્વસમય
પરસમય, સ્વદ્રવ્ય પરદ્રવ્યને ભિન્ન ભિન્ન યથાર્થ
જાણવાનાં વર્તવું તથા શુદ્ધાત્મ સ્વરૂપનો ઘાત
કરનાર ક્રોધાદિક કષાયોનો ભેદ વિજ્ઞાન રૂપ
તીક્ષ્ણ વાણવડે નાશ કરવો, તેઓનો આત્મ
સત્તાભૂમિમાં પ્રવેશ થવા દેવો નહિ, એમ શુદ્ધાત્મ
સ્વરૂપનું રક્ષણ કરવું, શુદ્ધાત્મ અનુભવમાં વિચરવું
તે અંતરંગ ક્રિયાશુદ્ધિ છે. યદ્યુક્ત—દ્રવ્યાનુયોગ

तर्कणायाम् “बाह्य क्रिया आवस्यकादि रूपा
 बाहिर्योगोस्ति च पुनः अंतरंग क्रिया च स्व-
 समय परसमय परिज्ञान रूपा ज्ञानक्रिया अपरो
 द्रव्यानुयोगोस्ति ” अंतरंगक्रियाशुद्धिनी प्राप्ति
 माटेज बाह्यक्रियाशुद्धि आदरणीय, प्रशंसनीय छे.
 संवर हेतु छे, पण अंतरंगक्रियाशुद्धिनी अपेक्षा वगरनी
 बाह्यक्रियाशुद्धि ते बंध हेतु छे.—“ शुद्धात्म अनु-
 भव विना बंध हेतु शुभ चाल ॥ आत्म
 परिणामे रम्या, एहज आस्रव पाल ॥ ”
 माटे बाह्यक्रियाशुद्धिमां प्रवृत्त यतां अंतरंगक्रिया-
 शुद्धिथी चूकवुं नहि अन्न अंतरंग क्रियाशुद्धिनी
 कारणरूप बाह्यक्रियाशुद्धिनी उपेक्षा करवी नहि माटे
 क्रियाशुद्धि तथा ज्ञानशुद्धि ए बनेनुं जिनाज्ञा प्रमाणे
 प्रालन करतो स्याद्वादमां कुशल एवो ज्ञानी शुद्ध
 निरामय निर्वाणपदने प्राप्त थाय छे.

यद्युक्तः—वसंततिलका “स्याद्वाद कौशल
 सुनिश्चल संयमाभ्यां, यो भाव यत्तु हरदः
 स्वामिहोपयुक्तः । ज्ञान क्रिया नय परस्पर

तीव्र मैत्री, पात्री कृतः श्रयति भूमि मिमां
स एकः ।”

अर्थः—जे पुरुष स्याद्वादमां कुशल अर्थात् जीवादि तत्त्वना शुद्ध ज्ञानपूर्वक समिति गुप्तिरूप संयम आदरतो शुद्धात्म स्वरूपे निरंतर भावे छे ते ज्ञानी पुरुष ज्ञाननय अने क्रियानयनी तीव्रमैत्रीनुं पात्र थतो शुद्धात्मभूमि-निरवाण पदने प्राप्त थाय छे. ॥ ६ ॥

बारवार जिनराज तुज पद सेवा हो होजो
निरमली ॥ तुज शासन अनुजाइ, वासन
भासन हो तत्त्व रमण वली ॥ ७ ॥

अर्थः—माटे स्याद्वाद वाणीना उपदेष्टा हे परमेश्वर ! आ भीषण भवसमुद्रमाथी तारवाने समर्थ एंवी आपना चरण युग्मनी सेवानो निरंतर मने लाभ मलजो, वली हे परमेश्वर ! आपना ज्ञान न्याय अने दया युक्त पवित्र शासननी रुची, ज्ञान तथा शुद्धात्म तत्त्वमां रमण ए सर्वे सदाकाल माहुरा आत्म परिणाममां वास करजो ॥ ७ ॥

शुद्धात्म निज धर्म, रुचि अनुभवथी हो

साधन सत्यता ॥ देवचन्द्र जिनचन्द्र, भक्ति
पसाये हो होशे व्यक्तता ॥ ८ ॥

अर्थ:-शुद्धात्म धर्म (सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्रादि) नी रुची तथा अनुभव जे वडे
थाय ते सर्वे साधनो सत्य छे, तथा हितकारी छे.
शुद्धात्म धर्मना अनुभवना हेतुरूपे आदरेला सर्वे
याह्य योगरूप साधनो सत्य तथा हितकारी छे. श्री
देवचन्द्र मुनि कहे छे के हे जिनचन्द्र ! आपनी
भक्ति पसाये अर्थात् आपनी आज्ञानुं सेवन कर-
वार्था (आणाकारी भक्तो, आणा छेइओ सो अभ-
क्तोत्ती) मारी सर्वे शुद्धात्म संपदा प्रगट थशे.
॥ ८ ॥ (संपूर्ण.)

॥ अथ श्री षोडशम नमिप्रभ जिन स्तवनम् ॥
अरज अरज सुणोने रुड़ा राजोया हो जी ॥ ए देशी ॥
नमिप्रभ नमिप्रभ प्रभुजी विनवुं होजी,
पामी पामी वा प्रस्ताव ॥ जाणोछो जाणोछो
विण विनवे हो जी, तोपण दास स्वभाव ॥
नमिप्रभ० ॥ १ ॥

अर्थ:-हे नमिप्रभ ! आपने आ जगत्त्रयमां प्रसु अर्थात् मालिक जाणी अनि दुःपाप्य आ मनुष्य भवरूप उत्तम अवसर पामी आप प्रति विनंती करुं छुं. हे देवाधिदेव ! आप अनंत ज्ञानयुक्त हुवाथी अमारा विनव्या वगर पण अमारी त्रणे कालनी सर्वे हकीकत प्रत्यक्ष पणे जाणो छो तोपण सेवकनो स्वभाव छ के स्वामी आगल पोतानुं दुःख दूर थवा माटे विनंति करे ॥ १ ॥

हुं करता हुं करता परभावनो हो जी, भोक्ता पुद्गल रूप ॥ ग्राहक ग्राहक व्यापक एहनो हो जी, रच्यो जड भवभूष ॥ नमि-प्रभ० ॥ २ ॥

अर्थ:-हे परमेश्वर ! अनादि विभाव योग हुं माहारा शुद्धात्म स्वरूपथी विमुंख रही, स्वाभाविक कर्तृता, स्वाभाविक भोक्तृता, स्वाभाविक ग्राहकता, स्वाभाविक व्यापकता दिगेरैथी चूकी माहाराथी विपरीत, विलक्षण, रूप रस गंध स्पर्शादि गुणमय अचेतन जे पुद्गल द्रव्य तेने ग्रहण करवानो कामी तेने नवा नवा अनेक रूपे बनाववानो अभिमानो तेने भोगववानो इच्छुक विगेरे थइ तेमांज निरंतर

व्यापी रह्यो, एम सादरा स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल,
स्वभावथी, विमृग्यपणे वर्त्ती जड संगतें जडवत्
वनी भवसमुद्रमां भ्रमण करवाने निरंतर उद्युक्त
थइ रह्यो ॥ २ ॥

आतम आतम धर्म विसारियो हो जी, सेव्यो
मिथ्यामाग ॥ आस्रव आस्रव बंधपणुं कर्युं हो
जी, संवर निर्जरा त्याग, नमिप्रभ० ॥ ३ ॥

अर्थ:-राग द्वेषादि विभाव रहित स्वरूपने यथार्थ
प्रत्यक्षपणे जाणवा रूप शुद्ध केवलज्ञान, निराका-
रोपयोग मयी केवलदर्शन, स्वरूपरमण-स्वरूप-
स्थिरता मय सम्यक्चारित्र, ए आदिज्ञानानुयायी
पणे वर्त्तना शुद्धात्म स्वभावो के जे आ संसार
समुद्रमांथी मुक्त करी अव्याबाध स्वतंत्र अखूट
परमानंद समूहनो निधान छे, ते शुद्धात्मधर्मने में
न जाणया, न चिंतव्या, न आदर्या पण ते शुद्धात्म-
धर्मने मलीन करनार-दूषवनार, मिथ्यात्व अज्ञान,
अने कषाय रूप मिथ्यामार्ग (विपरित आचरण)
के जे घोर अनंत दुःखनुं निदान छे तेनुं में रुचि
सहित सेवन कर्युं. ए मिथ्यामार्गने सेवतां आस्रव
तथा बंधना कर्ता थयो. मोक्षमार्ग रूप संवर

નિર્જરાને આદરી શક્યો નહિ.

આસ્રવ-“ નિરાસ્રવ સંવિત્તિ વિલક્ષણ શુભાશુભ પરિણામેન શુભાશુભ કર્માગમન માસ્રવઃ ”-શુદ્ધાત્મ અનુભૂતિથી વિપરિત જે શુભાશુભ પરિણામ વડે જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મનું આગમન (આવવું) તે આસ્રવ છે. મિથ્યાત્વ અવિરતિ કષાયોદિ જો આત્માના અશુદ્ધ પરિણામ તે ભાવાસ્રવ છે અને તે ભાવાસ્રવના નિમિત્ત વડે જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મ દલનું આવવું તે દ્રવ્યાસ્રવ છે.

બંધ-“વંધાર્તાત શુદ્ધાત્મોપલમ્ભ ભાવના વ્યુત જિવિસ્ય કર્મ પ્રદેશઃ સહસંશ્લેષો બન્ધઃ-મિથ્યાદર્શનાઽવિરતિ પ્રમાદ કષાય યોગા બન્ધ હેતવઃ ” મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, પ્રમાદ, કષાય અને યોગ વડે પૂર્વ કર્મ સાથે નવા કર્મનો સંબંધ (દ્રઢ મલવું) તે બંધ છે. તે બંધ ચાર પ્રકારે છે-પ્રકૃતિ, સ્થિતિ, અનુભાગ અને પ્રદેશબંધ. તમાં યોગ વડે પ્રકૃતિબંધ તથા પ્રદેશબંધ થાય છે અને કષાય વડે સ્થિતિ બંધ તથા અનુભાગબંધ થાય છે.

વિશેષ વિવેચન-“ પિડિણીઅત્તણ નિન્હવ,

ઉવઘાય પડસ અંતરાણાં ॥ અઘાસાયળયાણ,
આવરણ દુગં જિડં જયડ ” ॥

સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્દર્શન તથા સમ્યક્જ્ઞાની
તથા સમ્યક્દર્શનીના પ્રતિકૂલ આચરણથી, તથા
સમ્યક્જ્ઞાન તથા સમ્યક્દર્શને ઓલવવાથી, ગુરુને
બુઘાવવાથી તથા તેડનો ઉપઘાત કરવાથી, તથા
સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્દર્શન તથા તેના સ્વામી તથા
તેના કારણો ઉપર દ્વેષ, માત્સર્ય, ર્હર્ષા કરવાથી
તથા જ્ઞાન દર્શનમાં અંતરાય કરવાથી, જ્ઞાન દર્શન
તથા તેના સ્વામીની આશાતના કરવાથી જ્ઞાનાવરણ
તથા દર્શનાવરણ કર્મેનો બંધ થાય છે.

ઉન્માર્ગની દેશનાથી તથા સન્માર્ગનો ઘાત
કરવાથી ં વિગેરે કારણોથી મિથ્યાત્વમોહનીયનો
બંધ થાય છે. ક્રોધાદિક કષાય તથા હાસ્યાદિ
નોકષાયના સેવનથી ચારિત્રમોહનો બંધ થાય છે.

મહા આરંભ પરિગ્રહમાં તલ્લીનતા, રૌદ્રધ્યાન
તથા ઉગ્રકષાય વાડે નરકાયુ નો બંધ થાય છે. ગૂઢ
હૃદય, મૂર્ખતા, ધૂર્તતા તથા મિથ્યાત્વાદિ શલ્ય
વડે તિર્યંચ આયુનો બંધ થાય છે. અલ્પ કષાયતા,
દાનરુચિ તથા મધ્યમ ગુણ વડે મનુષ્ય આયુનો બંધ

थाय छे. सम्यक् दृष्ट्यादि अविरति गुण वडे देवायुनो बंध थाय छे.

बालतप, अकामनिर्जरा, सरलता, अनागारी-पणुं, विगेरे गुण वडे शुभनामकर्मनो बंध थाय छे. एथी विपरीत आतरण वडे अशुभ नामकर्मनो बंध थाय छे.

गुणद्रष्टी, मद रहितता, तत्त्व भणवा भणाववा उपर रुचि, जिन भक्तिमां मग्नता विगेरे गुण वडे उंचगोत्रनो बंध थाय छे. एथी विपरीत आचरण वडे नीचगोत्रनो बंध थाय छे.

गुर्वादिकनी भक्ति, क्षमा, करुणा, व्रत, संयम याग, कषाय, विजय, दान, शीलादिक धर्ममां दृढता विगेरे गुणोधी शातावेदनीयनो बंध थाय छे. तंथी विपरीत आचरण वडे अशातावेदनीयनो बंध थाय छे-शंका समकीत, तप, संयम, क्षमा विगेरे थी आस्रव बंध केम संभवे ? उत्तर “ रत्नत्रय मिह हेतु-निर्वाणास्यैव भवति नान्यस्य ॥ आस्र-वति यत्तु पुण्यं, शुभोपयोगस्य मपराध ॥ ” रत्नत्रय मात्र निर्वाण हेतु छे पण शुभाशुभ कर्मना हेतु नथी, देवादिक गतिना हेतु नथी. पण ज्यांसुधी

સંપૂર્ણ વીતરાગતા પ્રાપ્ત થઈ નથી, રત્નત્રયની અપૂર્ણતા છે ત્યાંસુધી સરાગતા વર્તે છે; તે સરાગતા-શુભેપયોગવડે કર્માસ્રવ થાય છે. જેમ વૃતમાં બાલવાનો સ્વભાવ નથી પરંતુ ઘી સાથે રહેલી અગ્નિથી ચલતાં ઘીથી ચલ્યો એમ બોલાય છે. તેમ રત્નત્રયથી તો કર્મબંધ થતો નથી તથાપિ તે રત્નત્રય સાથે વર્તતા શુભોપયોગ (સરાગતા) વડે બંધ થાય છે. માટે ચોથા ગુણસ્થાનથી માંડી સંપૂર્ણ વીતરાગ ગુણસ્થાન સુધી જે જે અંશે રત્નત્રય હોય છે તે તે અંશે બંધ નથી જેટલા અંશે રાગ વર્તે છે તેટલા અંશે બંધ થાય છે.

એમ શુદ્ધોપયોગથી ચૂકી અશુદ્ધોપયોગમાં વર્તતાં મોક્ષમાર્ગરૂપ સંવર તથા નિર્જરા તત્ત્વનો અનાદર કર્યો.

સંવર—“ કર્માસ્રવ નિરોધ સમર્થ સ્વ સંવિત્તિ પરિણત જીવસ્ય શુભાશુભકર્માગમન સંવરણં સંવરઃ ” શુભાશુભ કર્માસ્રવનો નિરોધ તે સંવર છે. તે સંવરના હેતુ સમિતિ, શુષ્ઠિ, પરિસહજય, જતિધર્મ, ભાવના તથા ચરિત્ર છે.

નિર્જરા—“ શુદ્ધોપયોગ ભાવના સામર્થ્યેન

नीरसीभूत कर्म पुद्गलानामेक देश गलनं
 निर्जरा ॥ ” शुद्धोपयोग भावनाना सामर्थ्य वडे
 नीरसीभूत कर्म पुद्गलानुं एकोदेश गलबु ते निर्ज-
 रातेनो हेतु तप छ. “ तपसा निर्जरा च ” तथा
 सर्व परद्रव्यनी इच्छानो निरोध ते तप छे “इच्छा
 निरोध स्तपः” ते इच्छा निरोधरूप भावयुक्त तप
 वे प्रकारे छे. अणसण “मूणोअरिया, वित्ती
 संखेवणं रसच्चाउ । काय किलेसा संलीणया
 य वइज्झो तवो होई ॥ पायच्छित्तं विणउ,
 वेयावच्चं तहेव सइज्झाउ । ज्ञाणं उस्सग्गोविय
 अभिमतगउं तवो होई ॥” एम छे प्रकारे घाह्य
 तथा छे प्रकारे अभ्यंतर तप छे ॥ ३ ॥

जड चल जड चल कर्म जे देहने हो जी
 जाण्युं आतम तत्त्व ॥ वहिरातमता वहि-
 रातमता में ग्रही हो जी, चतुरंगे एकत्व ॥
 तमिप्रभ० ॥ ४ ॥

अर्थ:-जड अर्थात् अचेतन तथा चल अर्थात्
 क्षयभंग्य पार्श्वाना परपोदावत अस्थिर जे शरीर

तेने में आत्म तत्त्व जाणयुं एटले शरीरमांज अहं-
 बुद्धि करी शरीर तेज हुं हुं एम जाणयुं-शरीर वचन
 अने मननी क्रियाने में आत्मक्रिया जाणी योग-
 क्रियानुं ममत्व कर्युं, एम में बहिरात्मभावनुं ग्रहण
 कर्युं, आत्माधी अन्य जे अचेतन, जड, क्षणभंगूर
 शरीर तेमां अहंबुद्धि तथा धन, स्वजन, परिजना-
 दिकमां ममत्व बुद्धि करी आत्म स्वरूपधी अजाण
 रह्यो, माहरा स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावने
 न जाण्या, पुद्गलना द्रव्य क्षेत्र, काल, भावमां
 अहं ममत्व मान्युं, जे भाव माहरा अस्तिधर्ममां
 नधी तेने में माहरा मान्या, आत्मप्रदेशधी बाहिरला
 परत्तेत्री भावने माहरा मान्या, अनंत ज्ञान, अनंत
 सुख, अनंत वीर्यथो रहित रह्यो. ॥ ४ ॥

केवल केवलज्ञान महोदधि हो जी, केवल-
 दंसण बुद्ध । वीरज वीरज अनंत स्वभावनो
 हो जी, चारित्त दायक शुद्ध ॥ नमि० ॥ ५ ॥

अर्थ:-पण हे नमिप्रभ जगत्गुरु! आप तो
 बहिरात्मभावनो अत्यंत अभाव करी सर्वे द्रव्यने
 तेना त्रिकालवर्ती पर्यायो सहित एक समये
 प्रत्यक्षपणे जाणवा समर्थ एवं जे केवलज्ञान तेना

महोदधि अर्थात् महान् समुद्रनी पेठे अखूट निधान
 थया छो, तेमज सामान्य सत्ता अवलोकन रूप
 केवलदर्शनना तथा कोइ पण काले जरा पण हीण
 क्षीण न थाय एवुं सहज आत्मीय अनंत वीर्ये
 प्रगट कयुं प्राप्त कयुं तथा क्रोधादिक सर्वे कषायोनो
 अत्यंत अभाव करी दायक चरित्र प्राप्त कयुं-प्रगट
 कयुं, अनंत आत्मीय परमानंदना भोक्ता थया ॥५॥

विश्रामी विश्रामी निज भावना हो जी,
 स्याद्द्विधादी अप्रमाद । परमातम परमातम
 प्रभु देखतां हो जी, भागी भ्रांति अनादि ॥
 नमि० ॥ ६ ॥

अर्थ:-तथा हे दयानिधान ! आप सर्वे परद्र-
 व्योना गुण पर्यायोमांथी रमण तथा आराम विश्रा-
 मनो त्याग करी पोताना केवलज्ञानादि शुद्ध
 स्वभावमां रमण करनारा स्थिरतापणे विराजमान
 थया छो बली हे भगवंत ! आप स्याद्वाद धर्मयुक्त
 सदा छो अर्थात् स्यात्अस्ति स्वभाववंत छो,
 स्यात्नास्ति स्वभाववंत छो स्यात्एक स्वभाववंत
 छो, स्यात्अनेक स्वभाववंत छो, स्यात्वक्तव्य
 स्वभाववंत छो, स्याद् अवक्तव्य स्वभाववंत छो,

स्यादनित्य स्वभाववंत छो, स्यात्अनित्य स्वभाव-
 वंत छो, स्यात्भव्य स्वभाववंत छो, स्यात्अभव्य
 स्वभाववंत छो, विगोरे अनंत स्याद्वाद धर्मयुक्त
 आप सदाकाल विद्यमान छो, तथा हे भगवंत !
 आप निरंतर अप्रमादभावमां वर्त्तो छो, क्षणमात्र
 पण पोताना शुद्धात्मधर्मधी च्युत तथी नथो, कारण
 के प्रमादना हेतु जे निद्रा विकथा विषय कषाय
 मद स्नेह विगोरे छे तेनो आपे सर्वथा नाश करेलो
 तथी हे परमेश्वर ! आप परमात्म पदने संपूर्ण-
 पणे प्राप्त थया छो. एवा आप परमात्मानुं साची
 रीते दर्शन थतां माहरी अनादीकालनी अनात्मामां
 आत्मपणानी भ्रान्तिनो नाश थयो ॥ ६ ॥

जिन सम जिन सम सत्ता ओलखी हो जी,
 तसु प्राग्भावनी ईह ॥ अंतर अंतर आत-
 मता लही हो जी, पर परिणति निरीह ॥
 नमि० ॥ ७ ॥

अर्थ:-एम हे परमात्म प्रभु ! केवलज्ञान केवल-
 दर्शनादि अनंत शुद्धधर्मयुक्त आप स्वजातिनुं यथार्थ
 रीते दर्शन थतां में माहरी सत्ताने आप समान

जाणी, सहही, आपना केवलज्ञानादि शुद्धात्म धर्म
मने रुच्या, ते प्रगट करवानी ईच्छा थई, परपरि-
णतिथी विरागभाव उपज्यो, अंतर आत्मताना
प्राप्ति थई. ॥ ७ ॥

प्रतिछंदे प्रतिछंदे जिनराजने हो जी, करतां
साधक भाव । देवचंद्र देवचंद्र पद अनुभवे
हो जी, शुद्धात्म प्राग्भाव ॥ नमिप्रभ० ॥ ८ ॥

अर्थ:-स्तुति कर्ता श्रीदेवचंद्र मुनि कहे छे-
हे भगवंत ! आप जेम मिथ्यात्व अविरति प्रमाद
कषाय योगनो त्याग करी परमात्म अवस्थाने प्राप्त
थया तेमज हुं जो आप प्रमाणे साधक भाव
आदरुं तो हुं पण निःसंदेह देवमां चंद्रमा समान
परमात्म पदनो आस्वाद लेनार भोगवनार धाउं;
शुद्धात्म धर्मनी संपूर्ण प्रगटता थाय. ॥ ८ ॥

॥ संपूर्ण ॥

अथ सप्तदशम श्री वीरसेन जिन स्तवनम् ॥

॥ लाङ्गलदे मात मल्हार ॥ ए देशी ।

वीरसेन जगदीश, ताहगी परम जगीश,

થાય છે, પણ હે ભગવંત ! આપે વીર્યાતરાયનો સમૂલ ક્ષય કરી, અઘૂટ, અનંત, અચલ વાયે સંપૂર્ણ પળે પોતાને સ્વાધીન-પ્રગટ કરી લીધું છે; તેથી આ સર્વે જગતવાસી જીવોમાં ઉત્કૃષ્ટ વીર્યવંત આપજ છો, એહવા આપના દ્રઢ સ્થિર અને સતેજ વીર્ય સામે મોહરાજા દ્રષ્ટિ કરવાને પણ સમર્થ થઈ શકતો નથી તો નજીક આવવાની શી વાત ? માટે આપનીજ ધીરજતા સર્વોપરી પદ ધરાવે છે ॥ ૧ ॥

અગાહારી અશરીર, અક્ષય અજય અતિ ધીર
આજ હો અવિનાશી અલેશી ધ્રુવ પ્રભુતા
વાળીજી ॥ ૨ ॥

અર્થ:-શરીર તે અનંત પુદ્ગલોના સમૂહ રૂપ અચેતન પદાર્થ છે, અને જીવ દ્રવ્ય પોતે એક તથા સચેતન પદાર્થ છે. તેથી જીવ દ્રવ્યથી શરીર તદન વિલક્ષણ, વસ્તુતઃ ભિન્ન પદાર્થ છે. તથાપિ અનાદિ અવિદ્યા થઈ. મેદ વિજ્ઞાનના અભાવે સંસારી આત્મા અનેક પ્રકારનાં કર્મ બાંધી, તે કર્મના ઉદય થઈ પ્રાણ થઈ શરીરનજ આત્મપણે જાણે છે સદૃશ છે તથા મનુષ્યના શરીરમાં રહેલા જીવને મનુષ્ય તથા દેવના શરીરમાં રહેલા જીવને દે-

विगेरे मनाग हे, अने तेथी संसारी आत्मा सशरीर पने हे. पण हे भगवंत ! आप तो ते अविद्यानो नाश करी संपूर्ण भेद विज्ञान प्राप्त करी, स्वप्न द्रव्यने तदन भिन्न भिन्न जागी शरीरमांथी अहे समन्व उठावी शरीरमांथी सर्वथा अनीत थपा हो माटे हे प्रभु ! आप अशरीर हो.

शरीर अनंत पुद्गलोना संयोगमांथी पनेले होवामांथी सचल तथा अस्थिर हे, तेथी तेमांथी केडलाक पुद्गलो स्थलांतरे जतां थजा पुद्गलो आहारवानी (लेवानी) जरूर पडे हे. माटे शरीर-धारीने आहारनी जरूर पडे; परंतु हे भगवंत ! आप तो अशरीर हो माटे आपने आहारनी जरूर नथी. आपनुं अंग एकता धारी हे तेथी तेमांथी कोइ पण काले रंचमात्र पण घसावानो, क्षीण धवानो संभव नथी माटे निःसंदेह आप अणा-हारी हो.

अनेक पुद्गलोना मलवामांथी जे वस्तु घनेली होय, तेज घसाई. भागी शके, पण एक पुद्गल परमाणुं आदि जे जे पदार्थमां एकत्व हे, असंयोगी छे, ते ते पदार्थ घसाई, भागी अथवा विणशी शके नहि. माटे हे भगवंत ! आप असंयोगी तथा

एकत्व सहित होवाथी आपना आत्म अंगमां कोइ पण काले रंचमात्र पण क्षय थवानो संभव नथी, आप अक्षय पदमां नित्य विराजमान छो.

सर्वे द्रव्यो पोतानी सत्ताभूमिमां पोताना गुण पर्यायोना स्वाभी पणे वर्त्तवाने सदा काल सत्ताधारी छे. कोइ पण अन्य द्रव्य तेमां प्रवेश करवानेज समर्थ नथी तो आपने जीतवानी शु वात ! माटे हे भगवंत ! आप सदा अपराजित (अजय) छो.

वली आपनुं वीर्य क्षायिकभावे होवाथी आप अत्यंत धीर वीर छो. जेम सूर्यना प्रताप सामे अंधकार अत्यंत अभाव पामे छे, तेम आप श्रीना क्षायिकवीर्य जन्य धीर वीरताना. प्रतापथी आपना कर्म शत्रुं अत्यंत अभावने प्राप्त थई गया छे.

जो के सर्वे द्रव्यो वस्तुतः अविनश्वर छे. तथापि अनेक पुद्गलोथी बनेला शरीरमां ज्यांसुधी अहं ममत्व बुद्धि होय छे त्यां सुधी ते शरीरनो नाश थतां आत्मां पोतानो नाश मानी नाशपणाना दुःखने अनुभवे छे. पण आपे पोताना आत्म अंगमां आत्मपणुं जाण्युं स्वीकार्युं, पोताना एकत्व पिंडना अनुभवी थया. तेथी विनाशपणानो प्रसंग नाश

भयो माटे आप निरंतर अचिनश्वर पदमां परमानंद भोगवों छों.

लेश्याना हेतु कपाय, योग छे पण आप तो कपाय तेमज योगधी सर्वथा मुक्त थया छों माटे अलंशी छों.

बली हे भगवंत ! आपनी प्रभुता पण हवे ध्रुव (निश्चल) थई छे, संसारी जीवो अज्ञान बशे पोताना सत्ताभूमिनो मर्यादा उलंघी परक्षेत्रे परगुण पर्यायोनी प्रभुता चाह छे, एहवा अन्यायी पुरुषोंनी कृत्रिम प्रभुता नाश पामे. परंतु आम न्याय शिरामणी होवाधी परगुण पर्याय विषे पोताना प्रभुता स्थापन करता नथी. निरंतर पोताना गुण पर्यायमां संतुष्ट छों. एम आपनी प्रभुता एक क्षेत्री, अप्रथग्भूत, तथा समवाय संबंधे होवाधी तेनो कांड पण कारणे त्रियोग थवा संभव नथी माटे आपनी प्रभुता खरेखर ध्रुव निश्चल छे, आपनी प्रभुताने कांड पण स्खलना करवा समर्थ थई शके तेम नथी. जे अन्यायी पुरुष पोतानुं घर छोडी पारके घेर चोरी करवा जाय तेनुं धन बीजा चांी बडे पहेलां लूटाइ जाय, पण जे न्यायी पुरुष बीजाना. पदार्थनी आकांक्षा नाइ राखतां पोतानी

विभूतिमां मंतोष पणे निरंतर सचेत रहे तेजी
विभूति बीजो कोण लुंटी शक ? ॥ २ ॥

अतींद्रिय गत कोह, विगत माय मय लोह ॥

आज हो सोहेरे मोहे जग जनता भणीजी ॥ ३ ॥

अर्थ: हे भगवंत ! आप अतींद्रिय छो. पांच
इंद्रियोना स्पर्श, रस, गंध, रूप, अने शब्द ए पांच
विषयो छे, माटे इंद्रियोनो विषय फक्त पुद्गल छे,
परंतु आप अरूपी द्रव्य होवाथी इंद्रिय विषयथी
तदन भिन्न छो तेथी आप इंद्रियो वडे अगोचर
(अतींद्रिय) छो.

शरीरादि परद्रव्यमां जेने अहं समत्व बुद्धि
होय तेने क्रोध उपजवानो संभव छे कारण के ते
शरीरादि अनित्य अने परक्षेत्री पदार्थो होवाथी
कोइ तेंन बगाडे विणशिव अथवा वियाग कर ते
उपर तेंन क्रोध उपज छे. पण हे भगवंत ! आपतो
ते शरीरादि परद्रव्यनुं सर्वथा समत्व तजी पाताना
नित्य, अभेद्य समवाय संबंधी ज्ञानादि गुणेमां
पातानुं स्वामित्व अनुभवो लो. नेने कोइ पण अन्य
द्रव्य रंचमात्र पण हरकत करवा समर्थ नथी तो
आपना परिणाममां क्रोधने अवकाश क्याथा !

ક્ષમા સરોવરમાં નિરંતર ક્રીડા કરતા આપ ભગવંતની પાસે ક્રોધાગ્નિ કેમ આવી શકે ?

વલી સર્પ જેવી અવિશ્વાસ્ય, જગત્માં ફસાવવાને અત્યંત વલવત્તર જાલ સમાન જે માયા પરિણતિ, તેને આપે તીક્ષ્ણ ધારવાળી આર્યવ રૂપી તરવાર વડે ઢિન્ન ભિન્ન કરી નાંચી છે.

વલી જાતિ, લાભ, કુલ, વિદ્યા, અધિકાર વિગેરે આઠ પ્રકારના મદરૂપ અતિશય દ્રઢ પર્વતને આપશ્રીએ માર્દવરૂપ વજ્રદંડવડે ચૂરેચૂર કરી નાંચ્યો છે.

તથા પરદ્રવ્યાદિને ગ્રહણ સંગ્રહ કરવારૂપ મૂર્છાજલે ભરેલા અતિશય વિસ્તીર્ણ લોભસમુદ્રને આપ નિસ્પૃહરૂપ વહાણમાં આરૂઢ થઈ સહજ લીલા માત્રમાં તરી સંતોષ ભૂમિમાં વિરાજમાન થયા છો.

એમ આત્મગુણનો ઘાત કરનાર તથા ભવતરુના મૂલ રૂપ ક્રોધાદિક કષાયોને આપ ભગવંતે સમૂલ ક્ષય કરી ક્ષમા, માર્દવ, આર્યવ, નિસ્પૃહતા વિગેરે અનુપમ ગુણાલંકાર વડે આપ સર્વોત્તમ શોભાયમાન છો, એવી આપની નિઃકષાય પરમ શાંત મુદ્રા અવલોકતા જગદ્વાસી જી વો અત્યંત વિસ્મય ધાય છે. ॥ ૩ ॥

અમર અલંડ અરૂપ, પૂર્ણાનંદ સ્વરૂપ । આજ
હો ચિદ્રૂપે દીપે ધિર સમતા ધળીજી ॥ ૪ ॥

અર્થ:—ઇન્દ્રિય, યત્ન, આયુ અને શ્વાસોશ્વાસ એ
ચાર જીવના વ્યવહાર પ્રાણ છે અને તે પ્રાણના
વિયોગે મરણ કહેવાય છે. પણ હે ભગવંત ! આપે
તે વ્યવહાર પ્રાણને પૌદ્ગલીક પર દ્રવ્યથી નિષ્પન્ન
સાક્ષાત્પણે જાણી તે પ્રાણ ઉપરથી મમત્વ ઉઠાવી
પોતાના શુદ્ધ ચેતના પ્રાણવડે પોતાનું જીવન
સ્વિકાર્યું છે, તે ચેતના પ્રાણનો આપથી કોઈ પણ કાલે
વિયોગ થાય તેમ નથી, માટે આપ સદા અમર છો.

જે સંયોગી પદાર્થ હોય તેમાં સંધિ હોય, અને
જેમાં સંધિ હોય તે ભાંગી તૂટી શકે. પણ હે
ભગવંત ! આપ અસંયોગી શુદ્ધ એક તત્ત્વ છો, આપના
અંગમાં સંધિ નથી, તેથી આપ સદા અલંડ છો.

પરમ સ્વભાવને અનુયાયીપણે દ્રવ્યના સર્વે
ગુણો હોય છે. જીવ દ્રવ્યનો પરમ ગુણ ચેતનત્વ છે
માટે જીવના સર્વે ગુણો ચેતનાનુગત હોય, એ
શિવાયના ગુણો જીવ દ્રવ્યમાં હોઈ શકે નહિ; માટે
રૂપ, રસ, ગંધાદિ ગુણો ચેતનાનુગત નથી માટે
રૂપાદિગુણોનો જીવ દ્રવ્યમાં અત્યંતાભાવ છે તેથી

हे भगवन्त ! आप सदा अरूपी हों।

जगत्वासी जीवो इष्ट पुद्गलोनी प्राप्ति, प्रभुता, तथा भोगवडे आनंद माने छें, पण ते पदद्रव्यना तावे होवाथी जगत्जीवना आनंद पराधीन, अवास्तविक, तथा क्षणभंगुर छे, पण हे भगवन्त ! आप तो मात्र पोताना गुण पर्यायोनीज प्रभुता, तथा भोगवडे आनंद मानो हों तेथी आपनो आनंद निरूपचरित पूर्ण तथा नित्य छे, एम हे प्रभु ! आप पूर्णानंद स्वरूप हों।

तथा हे भगवन्त ! आपना आत्मीय ज्ञान प्रकाश किरणो के जे सर्वे द्रव्यना त्रैकालिक परिणामथी अधिक छे, ते अनंत ज्ञान प्रकाश वडे आप निरंतर सर्वोपरी दैदिप्यमान हों। आपना ज्ञान प्रकाशनं या जगत्त्रयमां कोई उपमान नथी।

बली हे भगवन्त ! आप सर्वज्ञ तथा वीतराग होवाथी पूर्ण समतावंत हों। इष्टानिष्ट विकल्पथी सर्वथा मुक्त हों। ते समता क्षायिक भाव जन्य होवाथी हवे कोइपण काले आपना परिणाममां विसमतानो संभव नथी तेथी आप पूर्ण निश्चल समताना स्वामी हों॥ ४ ॥

वेद रहित अकषाय, शुद्ध सिद्ध असहाय ।

आज हो ध्याय के नायकने ध्येय पदे
ग्रह्योजी ॥ ५ ॥

अर्थ:-नपुंसक वेद, स्त्रीवेद, अने पुरुषवेद ए अणे
वेदनो नवमे गुणस्थाने तथा सर्वे कषायनो दशमा
गुणस्थानना अंतसुधीमां समूल क्षय करी दीधो छे,
तेथी हे भगवंत ! आप वेद तथा कषाय रहित छो,
तथा “स्वय परिणामे सिद्धा” ए सूत्र प्रमाणे
आपमां क्षायिक अने परिणामिक ए बे भावज वर्त्त
छे, सकल कर्मनो क्षय करी क्षायिकभावे पोतानुं
शुद्धात्म स्वरूप संपूर्ण सिद्ध प्रगट कर्युं छे. अनंत-
ज्ञान, दर्शन, चारित्रना स्वामी थया छो. अने
परिणामिक भाववडे अनंतकालसुधी आपना
ज्ञानादि गुणो असहायपणे निरंतर परिणमशे.
कोइपण काले कोइपण आपना ज्ञानादि परिणामने
स्खलना करी शकशे नहि माटे हे भगवंत ! आप
सादिअनंतकाल सुधी शुद्ध सिद्ध तथा असहाय छो.
उपर वर्णवेल ॥ ५ ॥ सहित शुद्ध सिद्ध तथा
असहाय आप भगवंतने अवलोकी आप समान
सिद्धपदनो कामी हुं सेवक ध्याता, आप त्रिलोक-
पूज्य भगवंतने ध्येयपदे स्थापुं छुं, आपना पदनुं
ध्यान करुं छुं. ॥ ५ ॥

દાન લાભ નિજ ભોગ, શુદ્ધ સ્વગુણ ઉપ-
ભોગ । આજ હો અજોગી કર્તા ભોક્તા
પ્રભુ લહ્યોજી ॥ ૬ ॥

અર્થ:-અંતરાય કર્મના ક્ષયવડે હે ભગવંત !
આપમાં દાનાદિક લબ્ધિઝ ક્ષાયિક ભાવે વર્તે છે.

વીર્યગુણની સહાયવડે સર્વે ગુણો પરિણમે છે.
તેમ જ્ઞાનગુણના ઉપયોગ વિના વીર્યગુણ સ્ફુરાયમાન
થઈ શકે નહિ માટે વીર્યને જ્ઞાનગુણની સહાયતા છે
તથા શુદ્ધજ્ઞાન પરિણામને ચારિત્રનું સહાય છે. વલી
ચરિત્ર પરાચરણ રૂપ ન પરિણમે તે ચારિત્રને જ્ઞાન-
ગુણનો ઉપકાર છે. એમ એક ગુણને બીજા ગુણોની
સહાય છે, તે સહાયરૂપ દાનના કર્તા હે ભગવંત !
આપજ છો. વલી એવું દાન; આપ નિરંતર આપ્યાં
કરો છો માટે આપ અક્ષય દાતા છો. તથા તે
દાનના પ્રભાવવડે સર્વે ગુણો પોતાની શુદ્ધ પરિણતિ
પરિણમે છે, તે રૂપ લાભ લેનારૂ પણ આપજ છો.
એમ આપમાં દાતા પાત્ર અને દેયની અમેદતા છે.
એમ જ્ઞાનાદિ પરિણામ હમેશાં શુદ્ધપણે વર્તે છે.
તજ્જન્ય આનંદના વેદનારા છો તેથી જ્ઞાનાદિ
પર્યાયના આપ નિઃપ્રયાસ પળે હમેશાં ભોક્તા છો.

જે એકવારજં ભોગવના યોગ્ય હોય તે ભોગ,
અને જે અનેકવાર ભોગવવા યોગ્ય હોય તે ઉપભોગ
કહેવાય છે માટે જ્ઞાનાદિ શુદ્ધગુણો સહભાવી
હોવાથી હમેશાં આપમાં કાયમપણે રહેનારા છે,
માટે આપમાં તે ગુણોનો ઉપભોગ છે.

વલી હે ભગવંત ! મન, વચન, કાયા તથા
કોઈ પણ પુદ્ગલયોગ વિના આપ પરકર્તૃત્વ તથા
પરભોક્તૃત્વ નિવારી સ્વભાવના કર્તા ભોક્તા
વન્યા છો, એહવા આપ ત્રિલોકપૂજ્ય પ્રમુનું મને
કોઈ સહત્ પુણ્યના પસાયે આજે દર્શન મલ્યું છે.
ઈન્દ્રિય ગોચર વસ્તુનું દર્શન તો સહજે સર્વે પામી
શકે પણ આપ તો અરૂપી નિષ્કર્મ છો. આપના
દર્શનની પ્રાપ્તિ તો વિરલાનેજ થઈ શકે છે. ॥ ૬ ॥

દારિસણ જ્ઞાન ચરિત્ર, સકલ પ્રદેશ પવિત્ર ॥ આજ
હો નિર્મલ નિઃસંગી અરિહા વંદિયેજી ॥ ૭ ॥

અર્થ:-આપનું દર્શન થતાં આપના સર્વે પ્રદેશ
અત્યંત નિર્મલ જ્ઞાન દર્શન અને ચારિત્ર વડે પરિપૂર્ણ
પવિત્ર જોઈ તથા આપનેજ જગત્ ત્રયમાં નિર્મલ
તથા નિઃપરિગ્રહી અવલોકી કર્મશત્રુનો અંત આણ-
નાર આપ શ્રી વીરસેન પ્રમુને કર્મ ક્ષય નિમિત્તે
ત્રિકરણ યોગે વંદુ છું ॥ ૭ ॥

देवचंद्र जिनचंद्र, पूर्णानंदनो वृंद ॥ आज
हो जिनवर सेवाधी चिर आनंदियेजी ॥ ८ ॥

अर्थ:-स्तुती कर्ता श्री देवचंद्र मुनि कहे हे
सर्वे जिनोमां चंद्रमा समान वर प्रधान हे वीरसेन
प्रभु ! स्वाभाविक, निःप्रमासिक, अनंत आनंदना
समूह रूप आप जिनेश्वरना आज्ञा सेवन रूप सेवार्थी
हूं पण आप समान अनंत परमानंदने प्राप्त थइश;
शिवकमलानो विलापी थइश. ॥ ८ ॥

॥ अथ श्री अष्टादशम श्री महाभद्र
जिन स्तवनम् ॥

तट यमुनानुरे अति रलीयामणुं रे ॥ ए देशी ॥
महाभद्र जिनराज, राज राज विराजे हो
आज तुमारडोजी । क्षायिक वीर्य अनंत,
धर्म अभंगे हो तुं साहिव बडोजी ॥ हुं
बलिहारीरे श्री जिनवर तणीजी ॥ १ ॥

अर्थ:-सर्वे जिनोमां शिरोमणी परमकल्याणना
निधान हे श्री महाभद्र प्रभु ! आपनुं राज्य
सर्वोपरी समाधि तथा अनंत विभूति युक्त निर्वि-
घ्नताए अलौकिक रीते शोभे हे, आपनुं राज्य

पराक्रम अक्षय, अजय तथा अपरिसीम छे, आपे सर्वे कर्मशत्रुवनो सपरिवार नाश कर्यो छे, निर्वंश कर्यो छे तेथी हवे कोइपण आपना राज्यमां विन्न करी शके तेन नथी तथा आपनी अनंत पर्यायरूप प्रजा, अत्यंत सरल पंडित तथा सदाचरणी छे, आपना धर्मरूप कायदानो जरा पण भंग करे तेम नथी, आपना सर्वे धर्म कायदा संपूर्ण न्याय तथा दया युक्त होवाथी सदा सर्वत्र अभंग छे; एम आप सर्वोत्तम राजापणे विराजो छो, आपना राज्यनी बलिहारी छे. ॥ १ ॥

कर्त्ता भोक्ता भाव, कारक कारण हो तुं स्वामी छतोजी । ज्ञानानंद प्रधान, सर्व वस्तुनो हो धर्म प्रकाशतोजी ॥ हुं० ॥ २ ॥

अर्थ:-बली ते पर्यायरूप प्रजाना उत्पन्न कर्त्ता पण आपज छो तथा तेना उपादान कारणरूप पण आपज छो, तेना अधिकरणादि अन्य कारको पण आपमांज अभेदपणे शोभे छे तथा ते प्रजाने सदाचरण युक्त-न्यायानुसार गमन करनार निरखी तज्जन्य राज्यानंदना भोक्ता पण आपज छो.

ते सर्वे प्रजामां शिरोमणी, आदरणीय तथा

अत्यंत यत्न पश्चात् ज्ञानानंद स्वदेशी शेटने आपे
 प्रधान पदे स्थाप्यो ज्ञे, ते ज्ञान प्रधान सर्वे प्रजाप्री
 संपूर्ण रीते माहितगार ज्ञे, जेना हृदयमां सर्वे
 प्रजाना भाव निरंतर प्रकाशित रहे ज्ञे यत्ना ते
 ज्ञानानंद प्रधान निरंतर आप समीप हाजर रहे ज्ञे
 समयमात्र पण दूरवर्त्ता नहि थतां सर्वे प्रजानुं
 सदैव निरिक्षण तथा संरक्षण करे ज्ञे तथा कोइने
 पण त्रास नहि आपतां अत्यन्त हर्षपूर्वक न्यायानुसार
 वर्त्तावे ज्ञे, लेशमात्र पण न्यायातिक्रम थवा देतो
 नथी, एवो अद्भुत चातुर्य तथा विवेकवंत ज्ञे. ॥ २ ॥

सम्यकदर्शन मित्त, थिर, निर्धारे अविस्वा-
 दताजी । अव्यावधि समाधि, कौश अनश्वरे
 रे निज आनंदताजी ॥ हुं० ॥ ३ ॥ देश
 असंख्य प्रदेश, निज निज रीते रे गुण
 संपत्ति भर्याजी । चारित्र दुर्ग अभंग, आतम
 शक्ते हो परजय संचर्याजी ॥ हुं० ॥ ४ ॥

अर्थ:-अभिग्रहादिक पांच मिथ्यात्वने समूल
 नाश करी जेणे पोतानुं अंग निर्मल करेलुं ज्ञे तथा
 जे- सम. संवेग, निर्वेद, आस्तिक्यता अने

અનુકંપાદિ લક્ષણે યુક્ત, તથા કુશલતા, તીર્થસેવા, ગુરુભક્તિ, દૃઢતા તથા શાસનની અનુમોદના વિગેરે ભૂષણોથી ભૂષિત, શંકા, કાંક્ષાદિ સર્વે વિસંવાદ ટાલી અવિસંવાદતાને સ્થિર દૃઢપણે પોતાના હૃદયમાં ધારણ કરતો મહા વિનયવંત, આપના શાસનનો પ્રભાવક ગુણનિધાન એવો “ સમ્યક્દર્શન ” નામે મહાધીર વીર શુભટ આપનો મિત્ર છે, જેની સાથે આપનો સમ્યક્જ્ઞાન પ્રધાન પણ એટલી તિવ્ર મૈત્રી રાખે છે કે ક્ષણમાત્ર પણ તેથી છૂટો પડી શકતો નથી, જેડનાં અંગ માત્ર જૂદા જણાય છે પણ જીવ તો જાણે એકજ છે ।

એવા સમ્યક્દર્શન અને સમ્પૂર્ણજ્ઞાન છે મહાન્ પુરુષો આપનું રાજ્ય અત્યંત ચાતુર્ય, ન્યાય અને દયા પૂર્વક સર્વ પ્રજાને આનંદમાં રાખતા નિષ્કંટકપણે ચલાવે છે તથા અવ્યાબાધ સમાધિરૂપ અનેક પ્રકારના રત્નો-વડે આપના સ્વર્ગનાને સદા પરિપૂર્ણ તથા અચૂટ રાખે છે, નિરંતર તજ્જન્ય પરમાનંદમાં આપ વિલસો છો;

વલ્લી આપ જ્યાંનું રાજ્ય કરો છો તે દેશ અસંખ્યાત પ્રદેશવાળો, જેની સીમામાં કોઈપણ વધઘટ કરી શકે નહીં એવો છે તથા જેના સર્વે પ્રદેશ

अनंता गुणाधिभाग्य संपत्तिवदे तथा पर्यायस्य
प्रजावदे ? भरेला ३.

एवा आपना अनुपम देशना, तथा तेषां वसती
सरल प्रजाना रक्षण निमित्ते आपना मित्र तथा
प्रधाने मली पोताना अह्यंत बल तथा चातुर्यवदे
चारित्ररूप अह्यंत मजवून तथा अभंग किल्लो
वांछ्यो दे. हे भगवंत ! एवा अलौकिक राज्यना आप
स्वामां यन्या द्यो. एहवुं अलौकिक राज्य के जे
मोहराजाए अनादिथी पोताना कदजे करी राख्युं
हतुं तेने आपे कंचा रीते प्राप्त क्युं ? — “ आत्म
शक्त हो परजय संचर्याजी ” अन्यनी मदद
शिवाय मात्र पोतानी आत्मशक्ति स्फुरायमान करी
सम्यक्दर्शन मित्र, तथा सम्यक्ज्ञान प्रधानने सा
राखी मोहशत्रुने पराभव करवा रणभूमिमां प्रवेश
करो ॥ ३ ॥ ४ ॥

धर्मक्षमादिक सैन्य, परिणति प्रभुताहो तुज
बल आकरोजी । तत्त्व सकल प्राग्भाव,
सादि अनंतीर रीते प्रभु धर्योजी ॥ हुं० ॥ ५ ॥

अर्थ:—मोहराजाना लश्करने शीघ्रमेव नाश
करनारा “ क्षांति, मार्दव आर्जव, मुक्ति, त्व,

संयम, सत्य, शौच, अकिंचन, अने ब्रह्मचर्य,
 एवा अपरिमित बलवाला सैन्य सज्ज कर्या अने ते
 सर्वे सैन्योनी प्रभुता (सेनाधिपति पणुं) शुद्धोप
 योगरूप महा अजीन अने निडर शुभटने आपी
 एवा अत्यंत तीक्ष्ण बलवडे मोहराजाना लश्करनो
 नाश कर्यो. क्षांति सैन्ये काध लश्करनां, मार्दवे
 मान लश्करनो, आर्यवे माया लश्करनां, मुक्ति
 लोभ-सृष्टा लश्करनो, तपे पराकांक्षानां, संयमे
 हिंसानो. सत्ये असत्यतानां, शौचे मलिनतानो,
 अकिंचने पर संग्रहबुद्धिनां अने ब्रह्मचर्ये पररमणनां
 एम मोहराजाना सर्वे लश्करनो तथा परिवारनो
 नाश करी मोहराजाने प्राण रहित कर्यो अने
 सादिअनेत भांगे “ तत्त्व सकल प्राग्भाव ”
 पोतानो संपूर्ण राज्याधिकार प्रगट कर्यो ॥ ५ ॥

द्रव्य भाव अरि लेश, सकल निवारारे
 साहिब अवतर्योजी । सहज स्वभाव विलास,
 भागी उपभोगीरे ज्ञानगुणे भय्योजी ॥ हुं० ॥ ६ ॥

अर्थ:-द्रव्य तथा भाव ए वने प्रकारना शत्रुनो
 समूल नाश करी आप शिवक्षेत्रना राजा बन्या हो

तथा पोताना नैरुपाधिक सहज स्वतंत्र भोगना
विलासी थया छो तथा आप ज्ञानानंदे परिपूर्ण सदा
उपयोगवंत अर्थात् पोताना राज्यनी संभालमां
निरंतर वर्त्तो छो ॥ ६ ॥

आचारिज उवझाय, साधक मुनिवर हो
देश विरत धरुजी । आत्म सिद्धि अनंत,
कारण रूपे रे योग क्षेमंकरुजी ॥ हुं० ॥७॥

अर्थ:-ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार,
तपाचार अने वीर्याचार, ए पंचाचारमां वर्त्तनार
तथा शिष्यजनने तेमां वर्त्तावनार (जोडनार)
एहवा छत्रीश गुणवान् श्रीआचार्य, तथा सूत्रपा-
ठना दातार श्री उपाध्याय, तथा पोताना शुद्धात्म-
तत्त्वने साधनार श्री मुनिराज, तथा पंचम गुणस्था-
नवर्त्ती देशव्रत धारीज, ए सर्वे आप महाराजनी
आज्ञामां वर्त्तनार, पोताना मनवचन कायायोगने
सयममां वर्त्तावनार होवाथी अनंत आत्म सिद्धि-
रूप आप समान राज्य भोग पामवाना कारण छे
अर्थात् तेऊ अल्पकालमां आप समान शिवभूमिनुं
राज्य प्राप्त करशे तथा ते आचार्यादिकोने शिव-
भूमिनुं राज्यप्राप्त करवामां आप भगवंत कारणरूपे

अर्थात् मददगार ह्यो ॥ ७ ॥

सम्यग्दृष्टि जीव, आणारागी हो सहु जिन-
राजनाजी । आत्म साधन काज, सेवे पदकज
हो श्री महाराजनाजी ॥ हुं० ॥ ८ ॥

अर्थ:-बलीचतुर्थ गुणस्थानवर्ती उपशम क्षयो-
पशम वा क्षायिक सम्यक्दृष्टि सर्वे जीवो हे भगवंत
भवसमुद्रमां सेतु समान आपनी आज्ञानारागी छे,
आपनी आज्ञा पालवाने उत्सुक छे, तेउं पोतानुं
शुद्धात्म स्वरूप प्रगट करवा माटे आप भगवंतना
द्रव्यभाव चरणकमलने सन्माने छे ॥ ८ ॥

देवचन्द्र जिनचन्द्र, भगतें राचो हो भवि
आत्म रुचिजी । अव्यय अक्षय शुद्ध. संपत्ति
प्रगटे हो सत्तागत शुचिजी ॥ हुं० ॥ ९ ॥

अर्थ:-स्तुतिकर्त्ता श्रीदेवचंद्रमुनि मित्र भावनाना
आवेशमां पोताना मुखकमलमांथी परम कल्याण-
कारी उपदेश आपे छ के पोतानी शुद्धात्म सिद्धिना
इच्छु हे भव्यात्माउं ! शिवक्षेत्रना महाराजा श्री
जिनेंद्रभगवाननी आणा सेवामां लीन थाउं जेथी

तमारी सत्तामा रहेली पवित्र, अधिनश्वर, अखूट,
अक्षय शुद्धात्म सपदा सहज प्रगट थरो ॥ ६ ॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ अथ एकोनविंशतिम श्री देवजसाजिन
स्तवनम् ॥

॥ महाविदेह क्षेत्र सोहमणु ॥ ए देशा ॥

देवजसा दरिसण करो, विघटे मोह विभाव
लाल रे ॥ प्रगटे शुद्ध स्वभावना, आनंद
लहरी दाव लाल रे ॥ देवजसा ० ॥ १ ॥

अर्थ:- सर्वकर्म कलंकधी रहित अत्यंत पवित्र
तथा अनंत ज्ञान दर्शन आदि अंतातीत अभ्यंतर
लक्ष्मियुक्त विलोकी चार निकायना देव तथा
इंद्रादिना समूह जेनी अनुपम यशवाद बोले व
एवा श्री देवजसा प्रभुनुं हे भव्यात्माओ ! दर्शन
करो, ते पश्य भगवंतना स्वरूपनुं सम्यक् प्रकारे
अवलोकन करो, जेथी अनादिश्री वलगेला अज्ञान
मिथ्यात्व मोह विगरे दुःखदायक विभाव समूल

નાશ પામે તથા જેમાંથી નિરંતર પરમાનંદની
કલ્લોલો ઉઠ્યાં કરે એવો સંવર પૂરે ભરેલો પવિત્ર
રત્નનિધાન શુદ્ધાત્મ સ્વભાવ પ્રગટ થાય, એવા
આપના પ્રત્યક્ષ દર્શનની હે પ્રભુ ! મને અત્યંત
અભિલાષા છે પરંતુ ॥ ૧ ॥

સ્વામી વસો પુષ્કરવરે જંબૂ ભરતે દાસ
લાલ રે ॥ ક્ષેત્ર વિભેદ ઘણો પડ્યો, કિમ
પોહોંચે ઉલ્લાસ લાલ રે દેવ ॥ ૨ ॥

અર્થ:-હે ભગવંત ! આપ તો પુષ્કલાવર્ત
વિજયમાં વિચરો છો અને આપના દર્શનનો અભિ-
લાષી સેવક હું જંબુદ્વિપના ભરતક્ષેત્રમાં વસુ છું
એમ આપના તથા માહરા મ્થાનકને ઘણું અંતર છે
તેથી આપના પ્રત્યક્ષ દર્શનની મનોકામના શીગીતે
પૂર્ણ થાય

પ્રકારાંતરે-હે ભગવંત ! જ્યાં કર્મ કલંકનો
રંચ માત્ર પણ પ્રવેશ નથી એવા પવિત્ર જ્ઞાનાદિ-
લક્ષ્મીના નિવાસરૂપ વિદેહ અર્થાત્ દહ રહિત
અલ્પો સિદ્ધક્ષેત્ર આપ વિરાજમાન છો અને હું
સેવકકર્મકલંકવડે મલિન, અજ્ઞાન અને મોહ અંધકાર
વડે ભરપૂર સંસાર ક્ષેત્રમાં પરિભ્રમણ કરું છું એમ

आपना तथा माहारा क्षेत्रमा अत्यंत भेद (अंतर)
पढ्यो छे तो आपना प्रत्यक्ष दर्शननी माहारी
मनोकामना शीरीते पूर्ण थाय ? ॥ २ ॥

होवत जो तनु पांखडी, आवत नाथ हजूर
लालरे ॥ जो होती चित्त आंखडी, देखत
नित्य प्रभु नूर लालरे ॥ देव० ॥ ३ ॥

अर्थ:-पण हे भगवंत ! जो माहारा शरीरे पांखो
होत तो हुंते पांखो वडे उडी पूरकलावत विजयमां
आप प्रभुना समीप आवी आपनुं दर्शन, वंदन
करत अथवा जो मने चित्त आंखडी अर्थात् ज्ञान
नेत्र अवधिदर्शन होत तो अहिंआं रहीने पण
चोत्रीश अतिशय अने अष्ट महा प्रातिहार्यादिक
विभूति सहित आपना तेजस्वी रूपने हमेशां
निरख्यां करत.

प्रकारांतरे-हे भगवंत ! जो माहारा आत्म अंगे
सम्यक्चारित्र रूप प्रबल पांखो होत तो ते पंखे वडे
चिदाकाशमां उडतो-विहार करतो आप ज्यां वसोछो
एवा विदेह-देह रहित सिद्ध क्षेत्रमां आप समीप
आवी हाजर थात अथवा जो कदाच चित्त आंखडी
कहेतां केवलदर्शन होता तो आ क्षेत्रमां रहीने

पण अनंत ज्ञान दर्शन आदि अत्यंत अभ्यंतर विभूति युक्त आपना लोकालोक प्रकाशक अनंत प्रकाश युक्त महान् तेजस्वी स्वरूपने निरंतर निरख्यां करत पण ते वने शक्तिओथी हुं रहित हुं तो आपनुं दर्शन केम पामु ? ॥ ३ ॥

शासन भक्त जे सुरवरा, विनवुंशीष नमाय लालरे ॥ कृपा करो मुज ऊपरे, तो जिन वंदन लालरे ॥ देवजसा० ॥ ४ ॥

अर्थ:-ऊपर प्रमाणे माहरामां देवजसा प्रभुनुं दर्शन पामवानी शक्ति नहि होवाथी जिनशासनना भक्त हे महान् देवो ! हुं आपनी सहाय चाहुं हुं, मस्तक नमावी विनंति करुं हुं के जो आप माहरा ऊपर कृपा करी जो अपना सामर्थ्य वडे देवजसा प्रभु पासे मने लेई जाऊं तो ते प्रभुनां दर्शन वंदननो मने लाभ मळे .

प्रकारांतरे-ऊपर प्रमाणे सस्थकृचारित्ररूप पांखो अथवा केवल दर्शनरूप आंग्वो मने नहीं होवाथी देवजसा प्रभुनुं दर्शन वंदन प्राप्त करवामां जिन शासन अर्थात् जिनेश्वरन आज्ञानुं पालन कर-नास तथा बीजाने तेमां जोडनाग हे सुरवरा अर्थात् महान् आचार्यो हुं आपने मस्तक नमावी

ક્રિયા સુપસાયરે, ભવિ ૦ ॥ અમૃત ક્રિયા
અનુષ્ઠાનથી, મન ૦ । આત્મ અમૃત થાયે
॥ ભવિ ૦ ॥ ૨ ॥

અર્થ :- જિનેશ્વરના જ્ઞાનાદિ શુદ્ધ ગુણોને
સેવન વહુમાનરૂપ અમૃતનું પાન કરવાથી અમૃત
ક્રિયા (અમૃતાનુષ્ઠાન) ની પ્રાપ્તિ થાય, અને
અમૃતાનુષ્ઠાન વડે સકલ મોહનો ક્ષય થઈ આત્મા
અતર અમર અચિનશ્વર શુદ્ધ સિદ્ધપદને પ્રાપ્ત થાય
અને અન્ય જીવોને અમૃત સમાન ભવ રોગથી મુક્ત
કરવાનો હેતુ થાય. અનુષ્ઠાન પાંચ પ્રકારનાં છે-
વિષાનુષ્ઠાન, ગરલાનુષ્ઠાન, અનાનુષ્ઠાન તથા
અનુષ્ઠાન, અને અમૃતાનુષ્ઠાન.

વિષાનુષ્ઠાન-આહારોપધિ પૂજર્થિ, પ્રમૃત્યા
શંસયા કૃતં, શીઘ્રં સચ્ચિત્તહન્તૃત્વા દ્વિષાનુષ્ઠાન
મુચ્યતે ॥ અધ્યાત્મસાર પા. ૪૫૬

અર્થ:-મિષ્ટાન્ન ભોજનની લાલચે, વસ્ત્રાદિ
ઉપકરણની લાલચે, પૂજાની લાલચે, રિદ્ધિર્ન
લાલચે જે તપ જપાદિ ક્રિયા કરે તે ક્રિયા ચિત્ત
શુદ્ધિની હાણનારી છે તેથી તે વિષાનુષ્ઠાન કહેવા
છે, આ ભવમાં પૌદ્ગલીક ભોગોની પ્રાપ્તિ થવાનું

लालचे ईच्छाप जे तपादि अनुष्ठान आदरतुं ते विषानुष्ठान छे.

गरलानुष्ठान-दिव्यभोगाभिलाषेण, कालांतर परिक्षयात् । स्वादिष्ट फल संपूर्त्ते गरलानुष्ठान मुच्यते ॥ यथा कुद्रव्य संयोग, जनितं गर संक्षितं । विषं कालांतरे हन्ति तथेदमपि तत्त्वतः ॥

अध्यात्म सार पा० ४५७

अर्थ:-परभवे देव इंद्रादिकना दिव्य भोग मले एवी इच्छा, लालचवडे जे तपादि अनुष्ठान आदरतुं ते गरलानुष्ठान छे. जेम बंगडीचूर्ण प्रमुख द्रव्यना संयोगे प्रगट थतुं विष ते गरल नामा विष कृतिप, ते घणा दिवस कष्ट पमाडा मारे छे; तेम गरलानुष्ठान पण अहितकारी कुगति आदिआपे छे.

अन्योन्यानुष्ठान-प्रणिधानाद्यभावेन कर्मान व्यवसायिनः ॥ संमूर्छिम प्रवृत्त्याभ मननुष्ठान मुच्यते ॥ उंघ संज्ञात्र सामान्यं, ज्ञानरूपानिबन्धनं । लोक संज्ञा च निर्दोष सूत्र मार्गानपक्षेणी ॥ अध्यात्मसार पा० ४५७

अर्थ:-संसारमां भ्रमण करता अनेक प्रकारना दुःख सहता ज्ञानादिक लक्ष्मी रहित दीन कंगाल जीवो ऊपर अत्यंत करुणा करी मोक्ष मार्ग दीनार होवाभी हे प्रभु ! आपज दीन दयाल द्यो तथा कृपालुद्यो कहेतां कृपाना आलय (निधान) द्यो, दीन अनाथ जीवोना नाथ द्यो, संसार समुद्रमां दूषता मद्य जीवोने उद्धारवा माटे आप पुष्ट अवलंबन द्यो, सर्वे देवोमां चंद्रमा सामन हे देवजसा प्रभ ! आपनी सेवना सर्वोत्कृष्ट अमृत समान परमानंद दातार तथा शिव सुखनी करनार हे ॥ ८ ॥

॥ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ विंशति श्री अजितवीर्यजिन स्तवनम् ॥

अजितवीर्य जिन विचरतार, मन मोहनारें
लाल ॥ पुष्कर अर्द्ध विदेहर, भवि मोहनारें
लाल ॥ जंगम सुरतरु सारिखोरें, मन
मोहनारें लाल ॥ सेवे धन्य धन्य तेहरें, भवि
मोहनारें लाल ॥ १ ॥

अर्थ:-अतिशय दुर्जय मोहराजानो जेणे लीला मात्रमां समूल क्षय करीनांख्यो हे, तथा जेनुं वीर्य हणवाने कोइ पण समर्थ नथी एहवा अतिशय निश्चलं

પ્રનન વીર્યવંત, પુષ્કલાવર્ત વિદેહમાં વિચરતા હે
 શ્રી અજિતવીર્ય પ્રભુ ! જેમ કમલને સુગંધનું આવાસ
 જાણી ભ્રમર તેમાં મોહી રહે છે, તેમ શુદ્ધાત્મ
 અનુભવ વડે ભરપૂર આપની અત્યંત શાંત મુદ્રા
 વિલોકી પ્રશસ્ત રાગ વડે ભવ્ય જીવોનું ચિત્ત
 આપમાં મોહિત રહે છે. એવી રીતે આ ત્રિલોકમાં
 આપ મનમોહન છો, તથા અજ્ઞાનરૂપ અંધકાર વડે
 આવૃત થયેલા ભવ્ય જીવોના હૃદય કમલને વિક-
 શ્વર કરનાર છો, તથા કલ્પવૃક્ષ તો સ્થાવર હોવાથી
 હમેશાં એકજ ટેકાપો રહી ઈચ્છિત ફલ આપી શકે
 છે તો પણ તે પૌદ્ગલીક તથા વિનશ્વર છે પણ આપ
 તો અનેક સ્થલે વિહાર કરી કોઈ પણ કાલે નાશ
 અથવા વિરસ ન થાય એટલું સ્વાધિન તથા સર્વ
 કામના જેથી પૂર્ણ થાય એટલું રત્નત્રયરૂપ ફલ
 ભવ્યજીવોને નિરંતર પ્રદાન કરો છો માટે હે ભગવંત !
 સરેસર આપજ આ જગત્ત્રયમાં અદ્વિતીય કલ્પ
 વૃક્ષ છો. તેથી હે ભગવંત ! જી પ્રાણીક આપના
 ચરણકમલની સેવામાં લીન છે તેડને ધન્ય છે ! વલી
 ધન્ય છે ! તેડને કે જે આ અપાર અવસમુદ્રને
 ગોપદની પેટે સહજ ડલંબી જનારા છે. ॥ ૧ ॥

જિન ગુણ અમૃત પાનથીરે, મન ૦ । અમૃત

अंतर्ग बहु सन्मान (विनय) युक्त आपने
विनंती करूं हूं के जो आप माहरा ऊपर कृपा
करो, मने सम्यक् चारित्रमां जोखो तो हूं ते चारित्र
रूप पांख बडे श्री देवजसा प्रभुनी समीप जई शकुं,
ते प्रभुना प्रत्यक्ष दर्शननो मने लाभ मले ॥ ४ ॥

पूछे पूर्व विराधना, शी कीधी ईणे जीव
लाल रे ॥ अविरति मोह टले नहीं, दीठे
आगम दीव लाल रे ॥ देवजसा० ॥ ५ ॥

अर्थ:-हे प्रभु ! आ माहरा जीवे पूर्वे आत्म
घर्मनी केवा तीव्र विराधना करी छे के आत्म
अनात्मनुं स्वरूप यथार्थ प्रकाश करनार जिनागम-
रूप दीपकनी प्राप्ति थया छतां पण पंचेंद्रियना
विषय जे पुद्गल परिणाम ते ऊपर रागकूप अवि-
रति तथा स्वपर जीवना द्रव्यभाव प्राण हणवारूप
हिंसा, तथा क्रोधादिक कषाय निगेरे आत्म आवने
अत्यंत अप्रशस्त तथा दुःखदायक परिणाम हजु-
तुधी टलता नथी ॥ ५ ॥

आतम शुद्ध स्वभावने, बोधन शोधन काज
लाल रे ॥ रत्नत्रयी प्राप्तितणो, हेतु कहो
ःह राज लाल रे ॥ देवजसा० ॥ ६ ॥

અર્થ:-કર્મ કલંક (સર્વ વિભાવગી) રહિત
શુદ્ધાત્મ તત્ત્વનું સ્વરૂપ ચતુર્થ પળે જે વડે જણાય
તથા અનાદિથી ચલગેલા મિથ્યાત્વ અજ્ઞાન કષા-
યાદિ વિભાવનો સર્વથા અભાવથઈ જે વડે મ હરો
આત્મા કર્મ કલંકથી રહિત પરમ પવિત્ર થાય તે
સમ્યક્જ્ઞાન સમ્યક્દર્શન સમ્યક્ચારિત્રરૂપ રત્નત્ર-
યની પ્રાપ્તિ શીરીતે થાય તે કહણા કરી કહો ॥૬॥

તુજ સરિલો સાહિવ મિલ્યો, માંજે ભવ અમ
દેવ લાલરે ॥ પુષ્ટાલંબન પ્રભૂ લહી, કોળ કરે
પર સેવ લાલરે ॥ દેવજસાં ॥ ૭ ॥

અર્થ:-સમસ્ત દૂષણોથી રહિત પરમ પવિત્ર
અનંત ગુણનો નિધાન, લોકાલોક પ્રકાશક, રત્ન-
ત્રયની પ્રાપ્તિ કરાવી અનાદિથી લાગેલી ભવ અન-
ણની દેવથી મુક્ત કરનાર, ભવ સત્ત્વરથી તારવામાં
પુષ્ટાલંબનરૂપ આપ ભગવંતનું દર્શન પામ્યા પછી
અન્ય કુદેવાદિકનું કોણ સેવન કરે ! કલ્પવૃક્ષને
ત્યાગી ધંતુરાને કોણ સેવે ॥ ૭ ॥

દીનદયાલ કૃપાલુઓ. નાથ ભવિક આધાર
લાલરે ॥ દેવચંદ્ર જિન સેવના, પરમામૃત
સુખકાર લાલરે ॥ દેવજસાં ॥ ૮ ॥

अर्थः—सूत्र कथित निर्दोष मार्गना अपेक्षा विना तथा शुद्ध प्रणिधानादिकने अभ्यासे उपयोग शून्ये संमूर्धिमनी पेठे बीजाना देखादेखा जे क्रिया करवा ते अन्योन्यानुष्ठान जाणवुं—सूत्रनी शैली रहित पणे गतानुगतिक पणे ओवसंज्ञाए तथा लोक संज्ञाए जे करवुं ते अन्योन्यानुष्ठान छे ते उपयोग शून्य अर्थात् ज्ञान रहित हांवाथी ते वडे सकाम निर्जरा थई शके नहि, आ विपादि त्रणे अनुष्ठानमां अशुद्ध क्रियानो आदर उपजे छे माटे आ त्रणे अनुष्ठान त्यागवा लायक छे.

यद्युक्तं सूत्रकृतांगे—“ जे अवुद्धा महाभागा,
वीरा असभत्त दंसिणो । अशुद्धं तेसि परकृतं,
सफलं होई सव्वसो ॥ ”

अर्थः—व्याकरणादिक लौकिक अनेक शास्त्रने जाणनारा पण जैन सिद्धांतना शुद्ध तत्त्वज्ञानथी अजाण अर्थात् सम्यक्त्व परिज्ञानथी रहित होवाथी अवुद्ध, एहवा पुरुषो जो के शूरवीर होय तथा त्यागादि गुण वडे लोकमां पूज्य गणता होय तथापि तेओनो दान, तप, नियम आदिकने विषे उद्यम पराक्रम ते सर्व अशुद्ध जाणवो. कारण के

तेओनुं तपादिक सर्वे अनुष्ठान कर्मबंधना कारण
 बिषे सफल थाय एटले नवा कर्मबंधननुं कारण
 थई शके नहि; कारण के सकाम निर्जरा तो
 सम्यक्ज्ञानेज थाय—“ जेय बुद्धा महाभागा,
 वीरा सम्मत्त दंसिणो, सुद्धं तेसिं परक्कंतं,
 अफलं होइ सब्वसो, ॥

अर्थ:-जे सम्यक्ज्ञान सम्यक्दर्शन सहित छे
 तेज बुध पुरुष छे, जे पूज्य छे, जे साचा शूरवीर
 छे, अने तेओनोज तपादिक अनुष्ठानमां उद्यम-परा-
 क्रम शुद्ध जाणवो, अने तेओनुं अनुष्ठान नवां कर्म-
 बंधन अटकावो शके छे तथा सकाम निर्जरानो
 हेतु छे.

तद्धेतु अनुष्ठान-सदनुष्ठान रागेण, तद्धेतु-
 मार्गगामिनां । ए तच्च चरमावर्त्तेऽनोभोगाव्यो
 देर्विना भवेत् ॥ धर्मयौवनकालोयं, भववाल-
 दशा परा ॥ अत्रस्यात् सत्क्रिया रागोऽन्यत्र
 चासत् क्रियादरः ॥

अर्थ -चरमपुद्गल परावर्त्ते धर्मना यौवनकाले
 बालदशा टले थके मार्गानुसारी पुरुष शुद्धानुष्ठानना

રાગ વહે ઉપયોગ સહિત જે કઈ ક્રિયા, આદરે તે તદ્દેતુઅનુષ્ઠાન જાણવું.

અમૃતાનુષ્ઠાન-સહજો ભાવ ધર્મોહિ શુદ્ધ શ્રંદન ગંધવત્ ॥ એતદ્ગર્ભમનુષ્ઠાનમમૃતં સંપ્રચક્ષ્યતે ॥ જૈનીમાણાં પુરસ્કૃત્ય, પ્રવૃત્તં ચિત્ત શુદ્ધિતઃ । સંવેગ ગર્ભમત્યંતમમૃતં તદ્વિદો વિદુઃ ॥

અર્થ:-સહજ ભાવધર્મ તે શુદ્ધ ચંદનની સુગંધ સમાન છે. અને તે ભાવધર્મ સહિત જે અનુષ્ઠાન તે અમૃતાનુષ્ઠાન છે. અત્યંત સંવેગ ગુણ સહિત ચિત્ત શુદ્ધિ જે જિનેશ્વરની આજ્ઞામાં વર્તવું તેને ગણધરાદિક અમૃતાનુષ્ઠાન કહે છે તેજ મોહનો સંપૂર્ણ ક્ષય કરવા સમર્થ છે. ॥૨॥

પ્રીતિ ભક્તિ અનુષ્ઠાનથી રે ॥ મ૦ ॥ વચન અસંગી સેવરે ॥ ભવિ૦ ॥ કર્તા તન્મયતા લહેરે ॥ મ૦ ॥ પ્રભુ ભક્તિ નિત્ય સેવરે ॥ ભવિ. ૧૩

અર્થ:-સર્વે પુદ્ગલ ભાવમાંથી પ્રીતિ ઊઠાવી માત્ર એક જિનેશ્વરના સ્વાભાવિક પવિત્ર જ્ઞાનાદિ ગુણોમાં અત્યંત પ્રીતિ ભાવ કરવો તેમાં ચિત્તની

तल्लीनता करवी ते प्रीति अनुष्ठान छे.

तथा श्री जिनेश्वरने परम करुणाना निधान,
भवसागरमांथी भग्य जीवोने मुक्त करनार, धर्म-
धुरंधर, तीर्थना प्रवर्त्तक जाणी तेओना गुणहु बहु-
मान करवुं, अतिशय आदर विनय पूजा सेवना
विगरे करवां . भक्तिअनुष्ठान छे.

बली लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञानवडे सर्वे
तत्त्वना यथार्थ वेत्ता तथा उपदेशक परम वीतरोग
आस श्री जिनेश्वरना वचननी यथार्थ श्रद्धा करवी
तदनुसार हर्षयुक्त आचरणमां प्रवर्त्तवुं ते वचना-
नुष्ठान छे.

हे प्रभु ! ए त्रण अनुष्ठान जे भावयुक्त सेवन
करे तेने सर्वे विभाविक क्रियाथी निवृत्ति तथा
सहज आत्मीक परिणामीकतानी प्राप्ति क्षय असंग
अनुष्ठान थाय.

एम ए चार अनुष्ठाननो कर्त्ता हे भगवंत !
आप स्वरूपने प्राप्त थाय. माटे हे प्रभु ! आपनी
भक्तिमां माहुरुं चित्त निरंतर लीन रहे एम भावनो
भावुं छुं ॥ ३॥

परमेश्वर अवलंबनेरे ॥ मन० ॥ ध्याता
ध्येय अभेदरे ॥ भवि० ॥ ध्येय समाप्ति हुवेरे॥

शेरे । मन० । रसवेधित अय जेमरे । भवि० ॥६॥

अर्थ:-कठोर अने कुरूप एवं अय कहेतां लीढुं ते रस वेधित थवाथी जेम सुंदर अने कोमल एहवा सुवर्णपणाने प्राप्त थई जाय छे. तेम जिनेश्वरनी भक्तिमां चित्त लीन थाय ते चित्तने ते जिनेश्वरना गुण रागरूप वेधकरसनो योग थाय तो ते चित्त पूर्ण निर्मलपणाने प्राप्त थाय. एम सेवक आप समान अरिहंत पदने प्राप्त करे. ॥ ५ ॥

नाथ भक्तिरस भावथीरे । मन० । तृण जाणुं पर देवरे । भवि० । चिंतामणि सुरतरु थकीरे । मन० । अधिकी अरिहंत सेवरे । भवि० ॥६॥

अर्थ:-आ घोर भवाटवीमां भ्रमण करता अशरण प्राणीओने हे भगवंत! मात्र एक आपज शरण छो, शिवपुरीए दोरवावाला छो. माटे आपज नाथ छो तथी हे प्रभु ! आपनीज भक्तिरूपरसमां माहरुं चित्त लीन थाय छे. विषय कषाययुक्त कुदेवो तरफ तृणनी पेटे त्याग भाव उपज छे. चिंतामणी तथा कल्पवृक्षथी पण प्रभनी सेवाने अत्यंत आदरणीय मानुं छुं. आपनी सेवा आगल ते चिंतामणी तथा कल्पवृक्षादि अतिशय तुच्छ पदार्थ भासन थाय छे. ॥६॥

परमात्म गुण स्मृति थकीरे ॥ मन० ।
 फरश्यो आत्म रामरे ॥ भवि० ॥ नियम
 कंचनता लहेरे ॥ मन० ॥ लोह ज्युं पारस
 पामरे ॥ भवि० ॥ ७ ॥

अर्थ:-वली हे प्रभु । संपूर्ण सम्यक्ज्ञान
 सम्यक्चारित्र, अनंत निश्चल वीर्य विगेरे आ
 परमात्माना गुणोना चितनमां जो माहरो आत्
 परिणाम सृष्ट थाय तो जेम् पारस मणिनां स्प
 थकी लोढा जेवी कुधातु कांचन थई जाय छे; ते
 विषय कषायमां परिणमतो माहरो आत्मा ते प
 कांचन समान शुद्ध परमात्म पदने प्राप्त थाय ॥ ७ ॥

निर्मल तत्त्व रुची थईरे ॥ मन० ॥ करजो
 जिनपति भक्तिरे ॥ भवि ॥ देवचंद्र पद
 पामशोरे ॥ मन० । परम महोदय युक्तिरे ॥
 भवि० ॥ ८ ॥

अर्थ:-भावदयाना आवेशो मित्रभावना युक्त
 स्तवनकर्त्ता श्री देवचंद्र मुनि भव्यजीवो प्रति
 सद्गुपदेश आपे छे के आभव परभव संबंधी विषय-
 भोग तथा मान पूजा विगेरे पौद्गलीक भावनी

आशंसा तज्जी, मात्र एक शुद्धात्म तत्त्वना रुचिवान
 थई, ओवसंज्ञा तथा लोक संज्ञा परिहरी, विधि
 विवेक पूर्वक सर्वे जिनमां शिरोमणि श्री अरिहंत
 भगवंतनी भक्तिमां आणा सेववांमां लीन थजो
 तो सर्वे देवोमां चंद्रम ॥ समान अरिहंत भगवंत
 सदृश परमात्म पदने पांमशो. एज उत्कृष्ट स्वाधीन
 अविनश्वर महोदय प्राप्त करवानी युक्ति छे ॥८॥

॥ संपूर्ण ॥

॥ कलश ॥ राग धन्याश्री ॥

वंदो वंदोरे जिनवर विचरंता वंदो, कीर्तन
 स्तवन नमन अनुसरतां ॥ पूरव पाप निकंदोरे
 जिनवर विचरंता वंदो ॥ १ ॥

अर्थः—विहरमान जिनेश्वरने हे भव्यो ! भाव सहित
 वंदो, तेओनो सद्गुणोनु' कीर्तन करो, तेओनु' स्तवन करो,
 मार्दव परिणामी थई तरण तारण जिनेश्वरने नमो, तेओने
 आज्ञाने अनुसरो, जेथी पूर्व वांधेलां अनेक प्रदोष
 कर्मों निर्मूल थाय ॥ १ ॥

जंबु द्वीपे चार जिनेश्वर, धातकी अ
आणंदो ॥ पुष्कर अद्द आठ महामुनि,
चोसठ इंदोरे ॥ जिनवर० ॥ २ ॥

अर्थ—जंबुद्वीपमां चार, धातकीमां आठ अने
सार्धमां आठ एम सर्वे मली वीश तीर्थंकर विह
जेने महारिद्धिना धारक एवा चोसठ इंदो पण
छे ॥ २ ॥

केवली गणधर साधु साधवी, श्रावक श्रा
वृंदो ॥ जिन मुख धर्म अमृत अनुभवतां,
मन आणंदोरे ॥ जिन० ॥ ३ ॥

अर्थ—श्री तीर्थंकरना मुख कमलमांथी
अमृत समान वचनोने अनुभवतां तेनो आस्वाद
केवली गणधर साधु साधवी श्रावक श्राविका सम्य
जीवो शद्ध आनंदमां मग्न रहे छे ॥ ३ ॥

सिद्धाचल चोमास रहीने, गायो जिन
छंदो ॥ जिनपति भक्ति मुक्तनो मारग, अ
शिवसुख कंदोरे ॥ जिन० ॥ ४ ॥

अर्थ—सिद्धाचल क्षेत्रमां चोमासुं रहीने जिन
वित्र गुणोनुं जेमां वखाण छे एवा छंदो (स्तव

વનાવ્યા-કારણકે જિનેશ્વરની ભક્તિ તેજ મુક્તિનો માર્ગ છે
તથા તેજ અનુપમ અવ્યાવાધ સ્વાભાવિક શિવસુખનું મૂલ
છે ॥ ૪ ॥

ઘરતર ગણ જિનચંદ સૂરિવર, પુણ્યપ્રધાન
મુણિંદો ॥ સુમતિસાગર સાધુરંગ સુ વાચક,
પીધો શ્રુત મકરંદોરે ॥ જિન૦ ॥ ૫ ॥

અર્થ :—હવે સ્તવન કર્તા શ્રી દેવચંદ્ર મુનિ પોતાની
પરંપરા વંશાણે છે, જેણે જિનપ્રણીત સૂત્રનો શુદ્ધ આસ્વા-
દન લીધો છે એવા ઘરતર ગણમાં શ્રી જિનચંદ્ર સૂરિ મહા-
રક નામે પ્રધાન આચાર્ય થયા, તેઓ શ્રીના શિષ્ય પ્રધાન
પુણ્યવાન મુનિશિરોમણિ શ્રી પુણ્યપ્રધાન નામે મહોપાધ્યાય
થયા, તેઓના શિષ્ય સુમતિના સમુદ્ર જેવા શ્રી સુમતિસાગર
નામે ઉપાધ્યાય થયા, તેઓના શિષ્ય મુનિપણામાં જેને રંગ
લાગ્યો છે એવા સાધુરંગ વાચક થયા ॥ ૫ ॥

રાજસાર પાઠક ઉપકારી, જ્ઞાનધર્મ દિણંદો ॥
દીપચંદ સદ્ગુરુ ગુણવંતા, પાઠક ધીરગયંદોરે
॥ જિન૦ ॥ ૬ ॥

अर्थः—ते पद्धी आवरणकोद्वार प्रमृज्य ग्रंथना कर्ता
 मुविहित सामानारी धारक श्रीगजमारजी महोपाध्याय यया,
 ते पद्धी न्यायादिक ग्रंथ अध्यापक गुर्यसमान तपस्वी
 ज्ञानधर्म उपाध्याय यया, ते पद्धी माहुरा सद्गुरु ज्ञान
 दर्शन चारित्र्य गुणना धारक, पंचाचारना पालक, उपसर्ग
 परिसह सामे गजेंद्रनी पंटे निश्चल रहेवावाला महावीर
 वीर दीपचंद्र पाठक यया ।

देवचंद्र गणि आत्म होते, गाया वीश
 जिणंदो ॥ रिद्धि वृद्धि सुख संपत्ति प्रगटे
 सुजस महोदय वृंदोरे ॥ जिन० ॥ ॥६॥

अर्थः—एमना शिष्य में देवचंद्र गणिए आत्म
 पदार्थने कर्म कलंकथी मुक्त करवाना हेतुए विहरमान
 वीश तीर्थकरना गुण गाया जेथी कर्म कलंक वडे आछा-
 दित थएली आत्माना ज्ञानदर नादि अनेक रिद्धिओ प्रगटे,
 वृद्धिने पामे तथा तजन्य सुख संपत्ति प्रगट थाय, अखूट
 निर्मल यश विस्तरे, आत्मीय गुण समूहनो महोदय
 थाय, सर्वत्र कल्याण वर्ते, सर्व जीव परमानंद ने
 प्राप्त थाय ॥ ६ ॥

॥ संपूर्ण ॥

બાલાવબોધકાર પ્રશસ્તિ

॥ કલશ ॥ હરિગીત ઇંદ ॥

વિહરમાનં જિનંદ મંગલ, કંદ જ્ઞાન દિનંદ જે,
વિકસાવતા નય કર સમૂહે, ભવ્ય ઉર અરવિંદ જે;
ઉપશમ સુધા સાગર ઉલાસન, પૂર્ણ અનુપમ ચંદ જે,
ભવદંદ ફંદ નિકંદિ પાયક, શુદ્ધ પરમાનંદ જે ॥ ૧ ॥

મોહ મદિરામાં મચેલા, કુમતિ મત માતંગના,
મહ ગંજવા બલ ભંજવા, બલવાન ગ્રંથ પંચાનના;
તે તીર્થનાયક તત્ત્વદાયક, વીશ જિનવર ગુણમણી,
“ દેવચંદ્ર ગણિ ” પવિત્ર મતિયે, સ્તવ્યા ગુણમાલા
મણી ॥ ૨ ॥

તે સ્તવન વીશ વિપે અતિશે, ઘોષ અનુપમ વરણવ્યો,
ત્યાં ચિત રમણ હિત મુજ મનોરથ, અરથ લલ્લવાનો થયો;
મધુ માસમાં અતિ મધુર સ્વરથી, કોકિલા જે ગાય છે,
તે તો સ્વરેસ્વર આગ્ર તરુના, પુષ્પનોજ પસાય છે ॥ ૩ ॥

તેમ ગુણ નિધિ “ સદ્ગુરુ, મનમુખ ” તણો
આશ્રય લહી । ,

“ સંતોષ ” પ્રેમે અર્ધ આ, મેં લખ્યો ‘દોહદમાં’
રહી;

ઝગણીશ છાસઠ સાલ આસો, શુક્લ સાતમ શશિ દિને,
જિનરાજ ભક્તિ પસાયથી, પૂર્ણ થયો ઉલ્લસિત મને ॥૫॥

હે મન્ય શુભ મતિ વિનતિ આ, મમ જમાયુત ઉરમાં ધરી,
ગુણ લીર ગ્રહજો હંસ પેઠે, નીર અવગુણ પરિહરી;
ભરપૂર સુખપ્રદ ગ્રન્થ આ, શશિ સૂર સમ શાશ્વત રહો,
વાંચન મનન અનુભવ કરી, ભવિ શશિ રમા અનુપમ
લહો ॥ ૫ ॥

श्रीमद् देवचन्द्रजी रचित अप्रकाशित स्तवन संग्रह

संग्राहक—अगरचंद नादटा

१ ऋषभ स्तवन ।

ढाल—मोरा आतमराम, कईयइ दरसण पास्यु ए देशी ॥
मोरा ऋषभ जिणंद, कईयइ दरसण पास्युं ॥ मो० ॥
सिद्धाचलनी पाजइ चढतां, मरु देवा सुत ध्यासुं ।
घणा दिवस नो अंग वमाहो, ते पामी सुख भास्युं । १ मो०॥
निरमल नीरइ प्रभु नइ अंगइ, कहीय(इ) न्हवण करास्युं ।
केसर चंदन मृगमद घसि नइ, तोरइ देह लगास्युं ॥ २ मो० ॥
पूज करी नइ आगलि वइसी, पांचे ङंग नमास्युं ।
भाव धरीनइ मननइ रंगइ, नाभ नंदन गुण गास्युं ॥ ३ मो०॥
वार २ तुम्ह मुख निरखी, हीयडइ हरखति थास्युं ।
तोरो ध्यान धरी अति सारो, सकल मिथ्यात विनास्युं ॥ ४ मो०॥
आठ करमनो अंत करीने, दुरगति दूरि गमास्युं ।
चंद कहइ इम मननै रंगइ, तुम्ह ध्यानइ मन लास्युं ॥ ५ मो०॥ इति

(देवचन्द्रजी लिखित पं में होने से उनका रचित संभव है)

ધ્યાન ચતુષ્ક વિચાર ગર્ભિત

શીતલ જિન સ્તવન

અથ ધ્યાન ચ્યાર સ્તવન ।

દૃઢા—

પ્રણમી શીતલનાથ પય, મુગ્ધ સંપતિ દાતાર ।

વિવન વિહારણ મય હરણ, ધરિ મનિ માય અપાર ॥ ૧ ॥

શ્રી સદગુરુ ના પય નમી, મન સૂં કરીય વિચાર ।

ધ્યાન ભેદ સંલેપ સૂં, કહિસૂં મતિ અનુસાર ॥ ૨ ॥

ઢાલ—રામચંદ્ર કહ વાગ, એહની ।

ચ્યાર ધ્યાન વિસતાર, મુણિજ્યો ભાવ ધરી રી ।

કહિસ્યું શ્રુત અનુસાર, મહિ મનિ ટેક ધરી રી ॥ ૧ ॥

આર્ત રીદ્ર બલિ ધર્મ, ચડથડ શુકલ થુણ્યડ રી ।

કહિસ્યું મતિ ઇક ચિત્ત, જિમ ગુરુ પાસ મુણ્યડ રી ॥ ૨ ॥

સંકા શોક પ્રમાદ, કલહ ચિંત મયકારી ।

અમ વનમાદ વિશેષ, ધન સંગ્રહ અધિકારી ॥ ૩ ॥

કામ ભોગ ની ચીત, જે જન મન મહં રાખડ ।

આર્ત ધ્યાન તિણ માહિ, લહીયડ ઇમ શ્રુત સાખડ ॥ ૪ ॥

પ્રથમ ધ્યાન ના પાય, ચ્યાર કહ્યા શ્રુત સંગડ ।

પ્રથમ અનિષ્ટ-સંયોગ, બોજડ ઇષ્ટ-વિયોગડ ॥ ૫ ॥

તીજડ રોગ-નિમિત્ત, મન મહં ચિંત ધરડ રી ।

ચડથડ સુખ નહ કાજિ, જીવ નિયાણ કરડ રી ॥ ૬ ॥

यत्त दैत्य विष साप, जल थल जीव सहू री ।
 सायण हायण भूत, गाजै सींह बहू री ॥ ७ ॥
 नयडइ आव्यइ दुक्ख, जे मन क्रोध करइरी ।
 टालूं दूरइ एह, मन मइं एम धरइ री ॥ ८ ॥
 एहवउ दुष्ट स्वभाव, जिण रह चित्त रहइ री ।
 आर्त्त अनिष्ट-संयोग, जिनवर तेथि कहइ री ॥ ९ ॥
 भोग सुहाग विशेष, चित वंछित सुह दाता ।
 बांधव मित्र कलत्र, ऋद्धि पितृ वलि माता ॥ १० ॥
 हुयइ इष्ट-वियोग, एहवउ ध्यान भिलइ री ।
 कइ कोइ उपाय, जिणसुं इष्ट मिलइ री ॥ ११ ॥
 इष्ट मिलेवा काज, मन संकल्प वहइ री ।
 ध्यान ए इष्ट वियोग, बीजउ आर्त्त कहइ री ॥ १२ ॥
 कास स्वास जर दाह, जरा भगंदर रोगा ।
 पित्त श्लेष्म अतिसार, कोष्ठादिक ना योगा ॥ १३ ॥
 एहवइ उपनइ रोग, मन मइ चित करइ री ।
 ओखध करः अपार, सुख कारण विचरइ री ॥ १४ ॥
 क्रोध मोह मद लुब्ध, मन मइ दुष्ट धरइ री ।
 रोग चित इण नाम, तीजउ आर्त्त वहइ री ॥ १५ ॥
 राज रिद्धि सुख पूर, काम भोग नित चाहइ ।
 धन संतान निमित्त, देह कष्ट बहु साहइ ॥ १६ ॥
 वासुदेव चक्रवर्त्ति, सुर किन्नर पद काजइ ।
 इह लोक नइ परलोक, सुख बांछा मन छाजइ ॥ १७ ॥

करइ तपस्या नत्य, मन मइ जे पद चाहइ ।
भण्यउ नियाणो नाम, आर्त्त अंत्य अवगाइइ ॥ १८
॥ इति आर्त्तध्यान ॥

दूहा—

सदा त्रिशूलउ शिर रहै, आंखे क्रोध अपार ।
बोलइ इम कहूआ वचन, मग्वइ मुकार चकार ॥ १॥
दुष्ट परिणामी खल सदा, विनय हीन वाचा (ल)
... ... ॥ २ ॥
... ... ।

(पत्रांक २ नहीं मिलने से रौद्र ध्यान का शेष वर्णन धर्म ध्यान का प्रारंभिक वर्णन अधूरा रह गया है)
..... नवि करइ, प्रथम पायौ तिको जाण रे ॥ ३ ॥ ए०
एह मुक्त जीव अनादिनो, कर्म जंजीर संयुक्त रे ।
पाहुआ कर्म कलंक थी, कीजस्यइ किण दिनइ मुक्त रे ।
आत्मगुण परगट कदि हुसै, छोडि पर पुद्गल संग रे ।
एह विचार अहनिशि करइ, यह बीजो ध्रम अंग रे ।
जीव उदय सुभ कर्म रइ, पामइ छइ सुख अपार रे ।
अशुभ उदय दुख ऊपजइ, एह निश्चय करि धार रे ॥
नरक मइ दुख जेतइं सह्यां, तेह आगे किसूं एह रे ।
पाय तीजइ इसउ चीतवइ, इम करइ भव तणउ छेह रे ॥
शब्द आकार रस फरस खब, गंध संस्थान संघयण रे ।
रूप ध्यावइ वली आपणउ, तजीय मोहादि वलि मयण रे ।

जीव जग तीन मड छइ किना, जीव मइ तीन जग सार रे ।
जीव वडउ जगत्रय वडउ, जीव जग तीन सिणगार रे ॥ ६
एह सरूप जगत्रय तणउ, चीतवइ चित्त मइ नित्य रे ।
तेथि संस्थान-विचय भलउ, पाय चउथउ ध्रम कित्त रे ॥ १०

दूहा—

धरम ध्यांन ध्यायां पछी, सुख शिव पद दातार ।
शुक्ल ध्यांन ध्यावे भविक, आतम रूप उदार ॥१॥
च्यार पाय तिण शुक्ल ना, पृथक्क-वितर्क विचार ।
बीजउ शुक्ल सुहामणउ, एक-तर्क अविचार ॥२॥
तीजउ शुक्ल श्रुतइ कह्यौ, सूदम-क्रिया प्रतिपाति ।
चउथउ शुक्ल ध्यावइ सदा, छिन्न-क्रिया प्रतिपाति ॥३॥

ढाल-मालीय कैरे वांग मइ एह नी

एक द्रव्य परयाय सुं, शुक्लइ मन लावउ लो ॥ अहो०
उतपति थिति इम भंग सुं, तिण मांहि मिलावउ लो । अहो० ॥१॥
साते नय दो नय थकी, जग रूप विचारइ लो । अ० ।
तीन योग इक योग सुं, मन मांहि उचारइ लो ॥२॥ अ०
पृथक्क-वितर्क विचारते, शुक्ल ध्यांन कहावइ लो । अहो० ।
निश्चय मन ध्यावइ सदा, ते चढतइ दावइ लो । अहो० ॥३॥
एक वस्तु नय सात सुं, मांहो मांहि मिलावइ लो । अहो०
एह मिलइ दो नय थकी, ए च्यार मिलावइ लो । अहो० ॥४॥
केवल तदि पामी करी, ते ध्यांन ज ध्यावइ लो ॥ अ०

एक-तर्क अविचार ते, शुक्ल बीजउ पावइ लो ॥ अहो ॥ ५ ॥
 अंतर्मुहुरत आयुष थकइ, ध्यान तीजइ आवइ लो ॥ अ० ॥
 निज गुण मोक्ष आवी रणां, दोय योग रुंधावइ लो ॥ अ० ॥ ६ ॥
 एक योग बादर अछइ, तेहिज पिण रोकइ लो ।
 सूक्ष्म उसास नीसास सू, निज रूप विलोकइ लो ॥ ७ ॥
 सूक्ष्म उछास लेतउ थकउ, निश्चय पद धारइ लो । अ० ।
 सूक्ष्म-क्रिया प्रतिपातीयउ, तीय शुक्ल संभारइ लो । अ० ॥ ८ ॥
 शैलेशી કરતાં થકાં, સવ જોગ ચલાવइ લો ॥ અ० ॥
 પાંચ અક્ષર પરિણામ મહિ, અદ્ભુત પદ ધ્યાવइ લો ॥ ૯ ॥
 પરવત જિમ દેહ છોડિ નહિ, તે મોક્ષइ જાવइ લો ॥ અ० ॥
 હ્રસ્વ વરણ હમ પાંચમइ, ચત્થઁ શુક્લ ભાવइ લો ॥ ૧૦ ॥
 દોય ધ્યાન સવ જીવ તઁ, નિશ્ચય કરિ ધ્યાવइ લો । અ०
 ધર્મ ધ્યાન ભવ્ય જીવ જે, તેહિજ ધ્રુવ પાવइ લો ॥ ૧૧ ॥
 શુક્લ ધ્યાન પંચમ અરइ, નિશ્ચય કરિ નાવइ લો ॥ અ०
 પહિલો સંધયણનો ધણી, શુક્લ ધ્યાન જ પાવइ લો ॥ ૧૨ ॥
 શ્રી શીતલ જિન વંદતાં, દોય ધ્યાન રાખइ લો ॥ અ० ॥
 ધરમ ધ્યાન મન ભાવીયइ, દેવચન્દ્ર હમ ભાખइ લો ॥ ૧૩ ॥

પાસ જિણંદ જુહારીયइ એ ઢાલ :

ધ્યાન ચ્યાર મહ વર્ણવ્યા, શ્રી આગમનइ અનુસારइ રે ।
 આર્ત રોદ્ર નહિ પરિહરિ, ભવિક ધરમ ચિત ધારइ રે ॥ ૧ ॥
 શ્રી શીતલ જિન વંદના, હું કરું સદા વાર વાર રે ।
 મવિયણ પ્રાણી જે હુવइ, તે તીજઁ ધ્યાન સંભારइ રે ॥ ૨ ॥

शुक्ल ध्यानं हिवणां नहीं, इण पंचम दूसम आरइ रे ।
 धरम शुक्ल दोइ ध्यानं सू, तिण प्रीति घणी मन माहरइ रे ॥३॥
 युग प्रधान जिणचंद ना, शिष्य पाठक गुणे सवाया रे ।
 पुन्यप्रधान शिष्य गुण निला, श्री सुमतिसागर उवम्माया रे ॥४॥
 साधुरंग वाचक वरु, तसु सीस पंडित विख्याता रे ।
 राजसार पाठक अछइ, जे जिनमत सू अति राता रे ॥५॥
 ज्ञानधरम शिष्य तेहना, वाचक पदना धारी रे ।
 तासु सीस राजहंस × नउ, मुनि राजविमलां सुविचारी रे ॥६॥
 तिण ए ध्यानं तणउ रच्यउ, तवन शीतल जिन केरउ रे ।
 भणतां गुणतां संपदा, दिन २ छव अधिकेरउ रे ॥७॥
 इति ध्यानं चतुष्क स्तवनं ॥ पं० देवचन्द्र कृतं ॥

लिखतं पं० दुर्गादास मुनिना

(पत्रांक २ नहीं मिला) पत्र ४ पंक्ति ११ अ० ३६।४०
 × दीपचंद्रजी का दीक्षावस्था का नाम है ।
 † देवचन्द्रजी का दीक्षावस्था का नाम है ।

३ लीवडी शान्ति जिन स्थापना स्तवनम्

वो सजन जन जिनवर बंदन, श्री शान्तिनाथ गुण वृदा रे ।
 स गुण रामे निज गुण प्रगटे, भाजे भव भय फंदा रे ॥१॥
 श्वसेन अचिरा नो नंदन, पूरण पुन्ये लहीये रे ।
 ान एकत्वे तत्व विबुद्धे, शुद्धातम पद ग्रहीये रे ॥२॥

संवत अठारसैं सातैं वरसैं, फागुण सुदि बीज दिवसे रे
 श्री शांति जिणैसर हरपैं थाप्या, (अति) बहुमाने सिव सुख
 वरसे रे ॥

लीवड़ी नयरी मंडण मनोहर, शांति चइत प्रसिद्धो रे ।
 वृद्ध शाख पोरवाड़ प्रगट जस, बोंहरे ढोसैं की(ली?)धो रे ॥
 जिन भगते जे धन आरोपे, धन धन तुसी मत धागे रे ।
 गुणी राग श्री तनमय चितैं, पुद्गल राग उतारो रे ॥३॥
 तीर्थकर गुण रागी बुद्धैं, रत्नत्रयी प्रगटायो रे ।
 'देवचन्द्र' गुणरंगे रमतां, भव भय सवैं मिटावो रे ॥६॥

इति शांति स्तवन संपूर्ण

(पत्र १८७ वां) आनंदजी कल्याणजी पेढी भंडार लीवड़ी

४ पार्वनाथ गीत

ढाल-सखी री प्यारउ २, एहनी

सखी री वामा राणी नंदा, अश्वसेन पिता सुखकंदा ।
 प्रभावती राणी इंदो, दीजै मुक्त परम आणदा हो लाल ॥१॥
 वीनती ए मुक्त धरियइ, पातक सगला हरीयइ ।
 मुक्त उपरि महिर जकरीयइ, तिम केवल कमला वरीयइ होलाजारी ।
 सखीरी मुक्त सेवन पाई दुहली, योनि गई सहू अहिली ।
 हिव सेवा कीजइ सहिली, मुक्त इच्छा पूरउ वहिली हो लाल ॥३॥
 सखीरी ते सहू पातक रोकइ, ते जय पामइ इण लोकइ ।
 रिद्धि लहइ बहु थोकइ, जे मुक्त पद पंकज धोकइ हो लाल ॥४॥

७ अष्ट रुचि सज्जाय ।

सुरपति नतदेव अभित गुणी श्री भाव प्रकाशक दिनमणी ।
 शासनपति वीर जिनेश ना, गणधर सोदम शुचि मना ॥१॥
 शुचिमना सोदम सीस जंबू, भणी सीख कही भली ।
 सुणो आतमतत्व रोचक, करी निज मति निरमली ॥
 ए आठ कारण मोक्ष साधक, परम संवर पद तणी ।
 करी आदर अतिहि उद्यम, यतन साधन अति वणी ॥
 अभिनवा गुणनी वृद्धि थास्यै, दोष क्षय जासै सवै ।
 ते मादि सेवो सूत्र आणा, सुख लही जिम भव भवै ॥२॥

‘अनुभव रंगीले आतमा’-ए ढाल

पहिलुं कारण सेवियै, भालै वीर जिणंद रे ।
 नित नित नवुं नवुं सांभली, शुद्ध धरम सुख कंद रे ॥
 थास्यै परम आणंद रे, ऊगै ज्ञान दिणंद रे, मलके अनुभव चंदरे ॥१॥
 आणा रंगी रे आतमा, तजिसुं सर्व प्रमाद रे ।
 करि आगम आस्वाद रे, वसि निज तत्व प्रसाद रे ॥ आंकणी ॥
 गीतारथ श्रुत-धर मिलै, आणी अति बहु मान रे ।
 नय निक्षेप प्रमाण थी, अभ्यासौ श्रुत ज्ञान रे ॥
 भजितुं जिनवर आणरे, पामै सुख निरवाणरे, परममहोदय ठाणरे ॥२॥
 बीजे थानक श्रुत तणी, लाधो तत्व विचार रे ।
 स्व पर समय निरधार थी, चउ अनुयोग प्रकार रे ॥
 ज्ञेय पणै सवि भाव रे, रहज्यो आत्म स्वभाव रे, तजि पर
 समय विभाव रे ॥३॥

आगम अर्थनी धारणा, थिर राखो भवि जीव रे ।
 ज्ञान ते आतम धर्म छै, मोह तिमिर हर दीव रे ।
 श्रुत अमृतरस पीव रे, साधन एह अतीव रे, संवर ठाण
 सदीव रे ॥३॥

पूरव संचित कर्म नी, निर्जरा थायै जेम रे ।
 तिम तम संवर सेवज्यो, साधि धर्म धरि प्रेम रे ॥
 चिन्तवजो मनि एम रे, कर्म लहै दिव केम रे, मुक्त
 पद निर्मल केम रे ॥४॥

पंचम धानक आग्रयो, धर्म रुची जीव जेह रे ।
 तेहनी करची रचणा, बाधइ धर्म सनेह रे ॥
 निम करसण जल गेह रे, घरमावष्टम देह रे, तो लहस्यो
 निज ध्रुव गेह रे ॥५॥

छट्ठ चौविह संवनै, सीमाधौ आचार रे ।
 क्रिया करता रे गुण बधै, सबै जमादि प्रकार रे ।
 नासै दोष विकार रे, धायै व्यान विसतार रे आलय शुद्ध
 विहार रे ॥६॥

गुणवंत रोगी ग्लान नी, बेयावज करौ रंग रे ।
 अनुकंपा सवि दीन नी, उत्तम भक्ति प्रसंग रे ।
 धायै विनय तरंग रे, शासन राज (ग?) उन्नंग रे, सहज
 सुभाव उत्तंग रे ॥७॥

सावर्गिक जन सर्व में, कइची थाय कसाय रे ।
 तजि सवि दोष अनुदान नी, जमण कयां सम थाय रे ।

इम जंप्पे जिनराय रे, समता शिव सुख दाय रे
 समनिधि मुनि गुण गाय रे, मुरपति सेवै तसु पाय रे ॥६॥
 तीजे अंगेरे उपदिस्यो, ए उपदेश उदार रे ।
 जिण आणा ए वर्त्तस्यै, ते गुणनिधि निरधार रे ॥
 ज्ञानसुधा (जल) दिल धार रे, वरसै श्री गणधार रे,
 पामै तसु सुख सार रे ॥१०॥ आ
 रयण सिंहासन बैसी नै, दाखे जगत दयाल रे ।
 देवचन्द्र आणा रुचि, होइज्यो बाल गोपाल रे ।
 आतम तत्त्व संभाल रे, करज्यो जिन पति बाल रे, धास्यो
 परम निहाल रे ॥११॥

८ पद

राग धन्यासिरी

मेरे जीउ क्या मन मइं तूं चीतइ ।
 इक आवत इक जात निरंतर, इण संसार अनंतइ १। मेरे जीउ ।
 करम कठोर करे जीउ भारीं, परत्रिय धन निरखंतइ ।
 जनम मरण दुख देखे बहुले, चउगइ मांहि भमते ।२। मे० ।
 काम भोग क्रीड़ा मत करना, जे बांधे हरखते ।
 वेर वेर तेहिंज भोगवता, नचि छूटे बिलचंतइ रे ।३। मे० ।
 होध कपट माया मद भूलइ, भूरि मिथ्याति भमंतइ ।
 देवचंद्र सदा सुख दाई, जिन ध्रम एक एकंतइ ।४। मे० ।

६ मेरे प्रीत क्यु न आप विचारो ।

कइसै हो, कइसै गुणधारक, क्या तुम लागत प्यारो ।१। टेक ।

तजि कुसंग कुलटा ममता को, मानो वयण हमारो ।

जो कछु भूठ कहे इन में तो, भौकूं सूंस तुम्हारो ।२। मे ।

यह कुतार जगत की चेरी, याकौ संग निवारो ।

निरमल रूप अनूप अवाधित, आतम गुण संभारो ।३। मे

मेदि अज्ञान क्रोध दसम गुण, द्वादश गुण भी टारो ।

अक्षय अवाध अनंत अनाश्रित, 'राजविमल' पद सारो ।४। मे० ।

१० चरित्र सुख वर्णन द्वादश दोधक

पर गुण सै न्यारे रहै, निज गुण के आधीन ।

चक्रवर्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।१।

इह नित इह पर वस्तु की, जिने परिलखा कीन ।

चक्रवर्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।२।

जिणहुं निज निज ज्ञान सुं, ग्रहे परिलख तत्त्व तीन ।

चक्रवर्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।३।

दस विध धरम धरइ सदा, शुद्ध ग्यान परीचीन ।

चक्रवर्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।४।

समता सागर में सदा, मील रहे ज्युं मीन ।

चक्रवर्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।५।

आसा न धरै काहू की, न कवहुँ पराधीन ।

चक्रवर्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन ।६।

स्व संयम पावस वसै, दहै प्रमाद दुख भीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ७।
 पुदगल जीव की सक्रि सब, जरत सप्त भय हीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ८।
 सप्तम गुण थांनक रहै, कीयो मोह मसकीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ९।
 क्षपकोपशम पयड़ी चहै, आतमरस सुधीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । १०।
 तूर्य ध्यान ध्याते समं, कीयै करम सब छीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । ११।
 देवचन्द्र वाचै सदा यह मुनिवर गुण वीन ।
 चक्रवर्त्ति तैं अधिक सुखी, मुनिवर चारित लीन । १२।
 (इति प्राकृत भाषया समस्या दोधक द्वादश, कृता पं० देवचंद्रेण)

११ हीयाली ।

॥ ढाल राय कुयारि वरि बाई भलो भरतार ए देशी ॥
 इक नारि रूपी रूयड़ी, जनमी ज साते तात ॥
 मलपती मानव भूलरइ, सगलां चित्त सुहात । १।
 कहो रे चतुर नर ए हीयाली सार ॥
 जो तुम्हे चतुर विचार ॥ क० ॥ आकणी ॥
 भरतार पासै नित रहै, बोजइ न भरता संग ।
 अवर पुरख आवी मिल्यां, वात करइ मन रंग ॥ २॥ क० ॥

मिच्छ निर्याणुपुत्री, विणु सावाणे मग्गी मीस-गुणे ।
 अणुचउ विणु (दु) गद्दीणा, सयरी पुण सयरि मम्मत्ते ॥६॥
 सम्मनिर्याणु-पुत्री, सदिया विणुभीममोद्ध-धम्माए ।
 पंसादिमु मम्मत्ते, निर्याणु-पुत्रीविणा उदओ ॥७॥
 तिरतिग विणुनरनवगं, विउयी आहार नित्य दुगद्दीणा ।
 सगहिय सय ओओ, निर्याणु दिव मिच्छत्त सव्व धीए ॥८॥
 मीसादि सुसगन्नवग, पणिंदिसो दयाइ पण गई ।
 वियत्तितियं चिय अटविणु, पणुंदि तिरि ओद्ध नवनवई ॥९॥
 मीस दुगद्दीण मिच्छे, मिच्छ अपजत्त नाग विणु धीए ।
 अणुतिरि-पुत्री-विहणा, मिसज्जआमीसि इगनवई ॥१०॥
 सम्मतिरि पुत्री सद्विआ, अभीम सम्भे दुदग सग पुत्री ।
 विणु देसे पज्जते, अणुच्छि अपजत्त सगनवई ॥११॥
 पुंमपज नपुंविण, जोगिमई सुओ हत्थन्नवई ।
 अपजत्ते तिरि परघा, मीस दुयी सुभग वज्जोयं ॥१२॥
 सुह असुहत्तगई दुस्मरं, पज्जत्तय थीण पणग संधयणा ।
 आगइ पण आदित्ता, पणिंदिओहेसु वज्जेजा ॥१३॥
 मिच्छोहे एगत्तरि, भरे सुथावर दुगंच साहरणं ।
 आयव दुगतिरि पणदस, विणुदुसयं ओद्ध मिच्छत्ते ॥१४॥
 मीस आहार दुगत्तित्थ, विणु सासणि अपज्ज मिच्छविणा ।
 अण चउत्तर पुव्वि विणा, समीसमीसेतु इगनवई ॥१५॥
 सम्मनर पुव्विखेवे, अमीस सम्मेय दुदगसग-पुत्री ।
 विणुदेसे सपमाए, इगसी पचक्ख तीय विणु ॥१६॥

प्रपमादीये सुओ हुज्ज, पज्जनरेधी अपज्ज विणुओहो ।
 इथीसुय आहार दुगे, दुवेद अपज्ज विणु ओहो ॥१७॥
 अपजत्तयतिरि समनर, अपज्ज नाणतूणं च नरतियगं ।
 उदओतिरिति गुण उदओ, देवेतिय थीण न पुंवेओ ॥१८॥
 नरतिरि निरयाण नवं, एगिदिय चउदस च संठाणा ।
 पण अंतिम थावर चऊ, अपवदुहगति दुस्सरयं ॥१९॥
 कुलगई वज्जिहु, सगसयरी ओहमास दुगदीण ।
 मिच्छे मिच्छं वाए, उणुसुर पुव्वी विणा तइए ॥२०॥
 मीस जुआ संमत्ते, सुर पुव्वी सम्मजू अमीस विणा ।
 देवात्थी विणुदेवी, पुरिस विणा सेसओ उच्चं ॥२१॥
 एगिदिणसु पुंपुण, सुर एगिदिहिण चौजाई ।
 उल्लोवंगय पणदस, सुभगति जिण चौग दुस्सरयं ॥२२॥
 तसज्जगई विणुओहे, मिच्छे अस्सीइ थाण सुहमतियं ।
 परघायव दुगमिच्छं, वज्जिय गुणसयरि सासाणे ॥२३॥
 विणुसाहरणं पुढवी, साहरणायव विहिण आऊसुं ।
 आयव विणुवण आयव, दुग साहरणं विणातेव ॥२४॥
 वाउ तसेयवज्जं, एगिदिसोदयाइपण पगई ।
 सगल्लिदिये सुचिवलं, वज्जियं ओहोइ ओहुच्च ॥२५॥
 एगिदिय ओहेपिव, ओराल उवंग कुगइ छेवट्ठं ।
 तस्सदुस्सरयं वज्जहु, थावर आयाव साहरणं ॥२६॥
 सुहम वियलस्सेहो, मणवय जोगेसु नव सयं ओहो ।
 पुव्वी चउ अपजत्तं, एगिदिओहे सुयजिका ॥२७॥

अणुभयवयणे धियतां, धियिज्ज मुरतिरि नरय धियव्वि आहारे ।
 दुग्घो पुब्बो अपज्जा, धकिय सामन्न मुरलंगे ॥२०॥
 सरत्तोहे धीण तिग्गं, सुत्तर दुत्तर पसत्थ अपसत्था ।
 गई आयव पणदुग्ग, सोसं धिणु अपज्ज जुअमीसे ॥२॥
 देयोहे नाययुग्ग, दुद्दग्ग तिग्ग धित्ति कुत्तगईहुंढ ।
 संदनीयं खेवहु, मुर पुब्बो धीण वेत्तव्वे ॥२१॥
 परचादुग्गसर दुत्तर, यगई सगई पमीस विणुमीसे ।
 संवयण छफ संठाण, पंच अंतिम ओराल दुग्ग पमत्तोहे ॥२२॥
 आहारे न पुमिस्थि, धीणनिय कुगई दुत्तरयं ।
 वज्जहु तम्मीसे पुण, सुत्तर सुगई अपरवा दुग्गं ॥२३॥
 थावर चउत्ताइ आयम, नारय तियं च तित्थं च ।
 आयवपुंथीवेओ, विणु पुरसे ओह सत्तसयं ॥२४॥
 इत्थिसुइत्थिखेओ, हारगदुग्गपुरसवेअविच्छेओ ।
 सढे सुरतियहारग, पुंढुगित्थं विणा ओहो ॥२५॥
 अन्नाण दुग्गे ओहे, मिच्छेपगईय मिच्छ पच्चइया ।
 विन्धंगे चउत्ताइ, थावर अणपुव्विहार दुग्गं ॥२६॥
 मीस दुग्गायवतित्थं, विणुमिच्छोहे पि मिच्छ सासणि ।
 ताणतिगे समदिट्ठी, पच्चइया आहार दुग्ग सहिआ ॥२७॥
 कोहादिसु परवारस, कसायतित्थं विमुत्तु उहव्व ।
 वेयकसायतिणव, लोभे दश गुणि सुगुणठाणा ॥२८॥
 समई पत्थेपपुण, पम्मत्त जुग्गा हवन्ति इगसीई ।
 संद्धित्थो हाण दुग्ग, विणमण नारोय पज्जिआगे ॥२९॥

सुहमेदेसेमिच्छे, सासाणमिसे सुनीय गुण ओहो ।
 समजिण जुगा जिणजुत्त, सट्ठिपगइ अहक्खाए ॥ ३६ ॥
 अविरय किण्हानीला, काउसु आहारतिथ विणु ओहो ।
 तेऊपम्हासु नारय, तियथावर जाइ चउतिथं ॥ ४० ॥
 तिरि पुव्वी आयविणु, ओहुट्ठ संयस जिण सुक्कोहे ।
 केवल दुग नोमीस, समओहदं सोहनाणव ॥ ४१ ॥
 जिणविणु अवरकुदंसण, थावर दुग आयवं चजाईतिगं ।
 साहरणं विण चक्खु, अवरकुसमा जावलीण जिणं ॥ ४२ ॥
 चउसय अविरय जुगा, हारग दुग जत्तवेअगे ओहो ।
 सजिणाअसम्म कोहा, खायगे ओह पगईओ ॥ ४३ ॥
 सुरविणु पुव्वीतियगं, आहार दुगं च सम्म मोहविणा ।
 व्वसमओहो सयगं, भव्वे ओहुव्व स्वयगई ॥ ४४ ॥
 मिच्छुच्चय भव्वियरो, सन्नीसुं अतिथजाइ चउभावं ।
 थावर दुग साहरणं, विणुतेरसयं ओह पुव्विव्व ॥ ४५ ॥
 नरतियगं देवट्ठं, आहार दुगंसुभगतिग सुगइं ।
 संवयणागिइदसगं, आइल्लाणं जिणचउक्कं ॥ ४६ ॥
 वज्जितुससन्नोसुअ, ओहे मिच्छे असुहमथीणतिगं ।
 आयवपरधा दुगमिच्छा, दुस्सरकुगई विणाबीए ॥ ४७ ॥
 पुव्वी विणु आहारे, ओहुव्वय थीण तिगविउव्विदुगं ।
 ओरालिय सत्तरसं, आयव परघादुगं मीसं ॥ ४८ ॥
 सुस्सर दुस्सरपत्तेय, साहारण खगइ दुगं विणाओहो ।
 अण्हारे कम्मणए निय निय गुण संभवं भणह ॥ ४९ ॥

दयन्तु दीरगापः, सयनसाइ गुपयं मगु-साऊ ।
 चेन्निय दुग छेओ, अजोगि अगुदीरगो निरुनं ॥ २० ॥
 सिरि "राजसार" पाया, वायगवर "नागनम्म" सीसम्स ।
 "रायदंसस्स" सीसेण, "देवसेदेण" भागयनिणं ॥ २१ ॥

॥ इति श्री उदय स्वामिन्व यथाशिक्षा समाप्ता ॥

जयनगरीय भण्डारन्ध पुणितदायाः प्रतिनिविष्टा मुनिविनः
 सागरेण विक्रमाब्दे २७८२ अश्विन शुक्ला पूर्णिमा ।